अक्तूबर-दिसंबर 2002

वर्ष : 34 ❋ अंक : 4

वैज्ञानिक

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद की पत्रिका
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के सौजन्य से प्रकाशित

भा. प. अ. केंद्र में विकसित हाइड्रोजन सल्फाइड गैस मॉनीटर

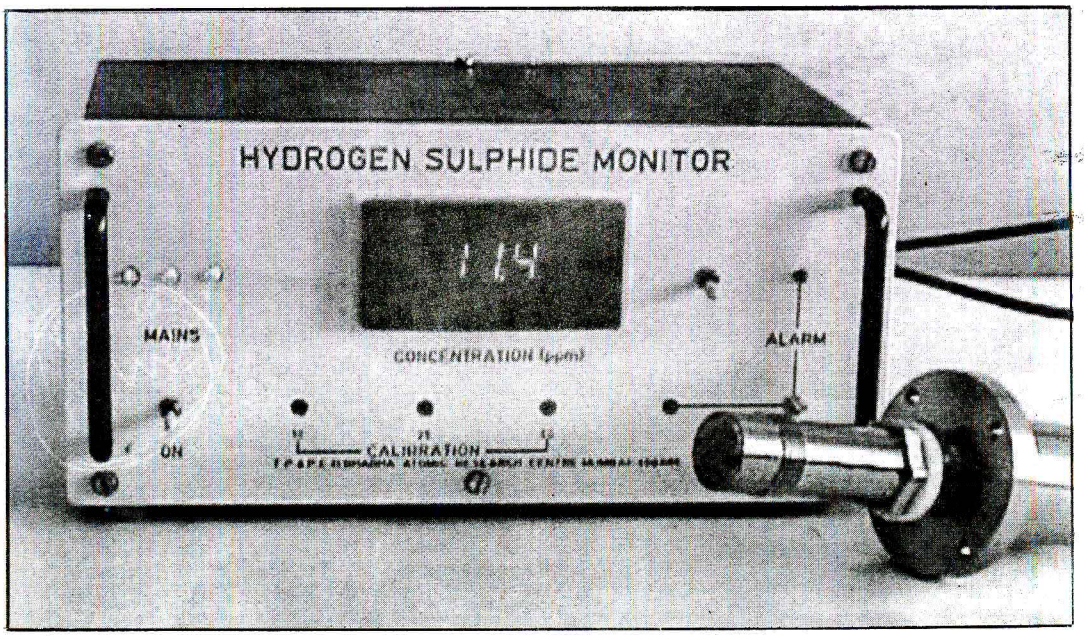

आवरण पृष्ठ पर प्रदर्शित हाइड्रोजन सल्फाइड गैस मॉनीटर का विवरण :

इसमें एक $SnO_2 : CuO$ का, तनु फिल्म प्रकार का एक संसूचक होता है जिसके द्वारा 0 - 50 पी. पी. एम. सांद्रता तक H_2S गैस का संसूचन किया जा सकता है । पर्यावरणीय दृष्टि से हवा में H_2S की अधिकतम 10 पी.पी.एम सांद्रता ही मान्य है । इस मॉनीटर का परिपथ संसूचक के अरैखिक संवेदन (रेस्पॉन्स) को रैखिक रेस्पॉन्स में बदलकर एवं ध्वनि अलार्म के माध्यम से गैस की सांद्रता (मात्रा) के बारे में जानकारी देता है । इसके अन्य तकनीकी विनिर्देशन इस प्रकार हैं; मापन परास : 5 - 50 पी. पी. एम., रेस्पॉन्स समय : 3 - 5 मिनट, रिकवरी समय : 10 - 20 मिनट, सुग्राहकता (हवा/गैस) : 10^4 (H_2S की 50 पी. पी. एम. मात्रा के लिए), जीवन काल : 2 वर्ष । इस तरह के मॉनीटर परमाणु ऊर्जा विभाग द्वारा संचालित भारी पानी प्लांट की साइट पर सुचारू तौर पर कार्य कर रहे हैं ।

लेखकों से निवेदन

"वैज्ञानिक" हेतु लेख भेजते समय कृपया निम्न बातें ध्यान में रखें :

- लेख का विषय नया हो जो पाठकों में अधिक ज्ञान प्राप्त करने की जिज्ञासा बढ़ाये,
- लेख मौलिक और पठनीय हो, भाषा सरल और बोधगम्य,
- कृपया अनुवादित लेख न भेजें,
- लेख टंकित किया हुआ अथवा स्पष्ट हस्तलिपि में दोनों ओर पर्याप्त हाशिया छोड़ कर काग़ज के एक ओर ही लिखें,
- विषय वस्तु समझाने के लिए यदि चित्र आवश्यक हों तो उन्हें अलग से सफेद काग़ज पर काली रोशनाई से खींच कर लेख के अंत में संलग्न कर दें,
- अस्वीकृत रचनाएं डाक-टिकट लगा लिफाफा संलग्न होने पर ही वापस की जायेंगी ।

- संपादक

अ नु क्र म णि का

वैज्ञानिक

वर्ष 34 अंक 4

अक्तूबर-दिसंबर 2002

: व्यवस्थापन मंडल :

श्री कुलवंत सिंह
(संयोजक)

डॉ. अशोक कुमार सूरी
श्री रमेश चंद्र पंत
श्री नंद लाल सोनी
श्री गोरा चक्रवर्ती
श्री मनीश कुमार
श्री करूनेश कुमार

: संपादन मंडल :

डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल
(संयोजक)

श्री हरिओम मित्तल
डॉ. राज नारायण पांडेय
श्री जय प्रकाश त्रिपाठी
श्री दिनेश कुमार शुक्ल

वार्षिक शुल्क

संस्थागत	व्यक्तिगत
100 रु.	50 रु.

कार्यालय

"वैज्ञानिक", हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद,
सूचना प्रभाग, सेन्ट्रल कांप्लेक्स,
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र,
मुंबई - 400 085

संपादकीय 3

लेख

1. पृष्ठ लेपन प्रौद्योगिकी 5
   - कुलवंत सिंह
2. सूचना तकनीकी : भारतीय परिदृश्य 19
   - आशा त्रिपाठी
3. पीने के पानी से आर्सेनिक हटाने की तकनीक 25
   - महेंद्र पांडेय
4. पौधों का वानस्पतिक नामकरण 30
   - रामलखन सिंह सिकरवार, शांता मेहरोत्रा, एवं पी. पुष्पांगदन

रोमांचक घटना

1. मौत के मुंह से "बाल-बाल बचे" 35
   - राजकुमार जैन

टिप्पणियां

1. दूध : एक संपूर्ण आहार 37
   - डॉ. चंद्रभान सिंह
2. पर्यावरण संरक्षण : धार्मिक पेड़-पौधों का योगदान 39
   - राजीव कुमार सिंह, उपेंद्र नाथ राय एवं शरद कुमार श्रीवास्तव
3. कृषि विज्ञान विषयक शब्दावली 41
   - डॉ. दिनेश मणि
4. तेल, गैस और ऊर्जा का भविष्य 43
   - डॉ. अवधेश शर्मा
5. रीढ़ की हड्डी के पक्षाघात से बचाव हेतु टीकों की खोज 45
   - रंजना सिंह

● "वैज्ञानिक" में लेखकों द्वारा व्यक्त विचारों से संपादन मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है ।

● "वैज्ञानिक" में प्रकाशित समस्त सामग्री के सर्वाधिकार हिं. वि. सा. परिषद के पास सुरक्षित हैं ।

● "वैज्ञानिक" एवं हिं. वि. सा. परिषद से संबंधित सभी विवादों का निर्णय मुंबई के न्यायालय में ही होगा ।

'वैज्ञानिक' में प्रकाशित सामग्री का आप बिना अनुमति लिये उपयोग कर सकते हैं । परंतु इस बात का उल्लेख करना अनिवार्य होगा कि अमुक सामग्री 'वैज्ञानिक' से साभार ली गयी है ।

6. नारियल में मौजूद प्रोटीन और कोलेस्ट्रॉल 46
- बालकृष्ण काबरा "एतेश"

7. कपास का पत्ती मरोड़ (लीफ कर्ल) विषाणु रोग व रोकथाम 47
- डॉ. प्रदीप शर्मा

विज्ञान कविता

1. वैज्ञानिक 29
- आशा त्रिपाठी

2. आण्विक ताप विद्युत गृह 60
- श्रीमती आशा सिंह

विज्ञान समाचार

● भा. प. अ. केंद्र से 50

● अन्य विज्ञान समाचार 52

श्रद्धांजलि

चाँद-सितारों की दुनिया में खो गयीं कल्पना चावला 57
- डॉ. देवकी नंदन

कुछ फूल : कुछ कांटे 60

सूचना

पिछले एक वर्ष में ही 'वैज्ञानिक' प्राप्ति के लिए पते में परिवर्तन हेतु लगभग **40** अनुरोध हमें प्राप्त हुए हैं । उनमें सदस्यता संबंधी पूर्ण जानकारी न होने से काफी कठिनाई होती है । अतः कृपया पते में परिवर्तन हेतु अपना पुराना पता, नया पता एवं 'हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद' का सदस्यता क्रमांक अवश्य लिखें ।

कुलवंत सिंह
व्यवस्थापक 'वैज्ञानिक'

संपादकीय

इलेक्ट्रॉनिक मेल : कितनी सुरक्षित, कितनी गोपनीय

इसमें संदेह नहीं है कि सूचना प्रौद्योगिकी आज एक ऐसे उन्नत स्वरूप पर पहुंच चुकी है जिसके फलस्वरूप संचार अत्यंत आसान, आधुनिक एवं उपयोगी बन गया है । अधिकांश परिवारों में ख़बरों के आदान-प्रदान में टेलीफोन के साथ-साथ इलेक्ट्रॉनिक मेल (ई-मेल) की चर्चा आम बात हो गयी है । इसमें आयी सरलता तथा तीव्रता के कर्णधारों में इलेक्ट्रॉनिकी तथा प्रकाश इलेक्ट्रॉनिकी सर्वोपरि हैं । इस आधुनिक संचार व्यवस्था से जन जीवन किस प्रकार प्रभावित होता है, इस संबंध में कुछ विचार 'वैज्ञानिक' के जनवरी-जून (1996) के संपादकीय में प्रस्तुत किये गये थे ।

इन्टरनेट पर उपलब्ध विभिन्न सुविधाओं में से ई-मेल काफी प्रचलित हो रही है क्योंकि इसकी सहायता से किसी भी रूप (छवि, पाठ, आंकड़े, ध्वनि आदि) में उपलब्ध जानकारी/सूचना का संचार/प्रेषण एक हल्के से क्लिक द्वारा संभव हो जाता है । आखिर यह पद्धति/प्रणाली क्या है ? यह एक ऐसी प्रणाली है जिसमें प्रेषक तथा प्रेषती (रिसीवर) दोनों के पास एक एक कंप्यूटर होना चाहिए । कंप्यूटर के साथ-साथ दोनों के पास मोडेम (modem) एवं टेलीफोन लाइन अथवा इन्टरनेट से संबद्धता होनी चाहिए । यह एक-मार्गी प्रेषण है जिसमें समाचार/जानकारी भेजते समय दूसरे पक्ष का कंप्यूटर पर बैठना आवश्यक नहीं होता जबकि टेलीफोन द्वि-मार्गी संचार है जिसमें दोनों का टेलीफोन पर रहना आवश्यक होता है (हालांकि आजकल उत्तर देने वाली मशीन (आन्सरिंग मशीन) पर संदेश छोड़ा जा सकता है) । ई-मेल सुविधा की ख़ूबी यह है कि प्रेषक तथा प्रेषती संदेश प्रेषण/पढ़ने के लिए अपना-अपना सुविधाजनक समय चुन सकते हैं और आवश्यक जानकारी को प्रिंटर की सहायता से छाप भी सकते हैं । प्रत्येक ई-मेल खाते का अपना विशिष्ट गोपनीय कोड होता है । परंतु यह कितना सुरक्षित और गोपनीय रहता है, इस पर समय-समय पर प्रश्न उठते रहे हैं ।

सूचना तकनीकी में हो रहे उत्तरोत्तर विकास के फलस्वरूप आज बड़े पैमाने पर वैयक्तिक जानकारियों को एकत्र करना, उनका संग्रह तथा विश्व में कहीं भी बैठकर उन्हें पुन: इन्टरनेट के माध्यम से ढूंढ़ निकालना आसान सी बात हो गयी है । इस प्रकार की अंतर्राष्ट्रीय संबद्धता के कारण ही गोपनीय संदेशों एवं जानकारियों की अनधिकृत रूप से चोरी भी संभव हो गयी है । कुछ विकृत मनोवृति के चालाक लोग ई-मेल कोड का पता लगाकर व्यैयक्तिक, सामूहिक, राष्ट्रीय जानकारियों का पता लगा कर उनका गलत इस्तेमाल करने में लगे हैं । इसके साथ ही सबसे बड़ी समस्या 'वायरस' के कारण आती है । एक रिपोर्ट के अनुसार आज प्रत्येक 200 ई-मेलों में एक 'वायरस' संक्रामक रोग की तरह मौजूद है । यह संख्या एक वर्ष पहले तक इसकी आधी (यानी 400 ई-मेल में एक) हुआ करती थी । ये वायरस ई-मेल में प्रेषित जानकारियों/संदेशों को नष्ट या भ्रष्ट कर देते हैं ।

इसके अलावा ई-मेल के द्वारा अवांछनीय व्यावसायिक जानकारियों (जो अश्लील साहित्य के रूप में हो अथवा सस्ते विज्ञापनों इत्यादि के रूप में) की भरमार भी आज देखने को मिल रही है । यह स्पाम (SPAM) कहलाता है और इनसे प्रयोक्ता का मेल-बॉक्स अवांछनीय सामग्री से एकदम भर (क्लॉग्ड) जाता है । यह ई-मेल की सुविधा उपलब्ध कराने वाली कंपनियों के लिए एक बड़ी समस्या बन गयी है क्योंकि प्रयोक्ता समय-समय पर इस बारे में शिकायत करते रहते हैं । हालांकि हर कंपनी अपनी तरफ से प्रतिदिन करोड़ों ऐसे संदेशों को प्रयोक्ता तक पहुंचने से पहले निकाल देती है फिर भी उससे कई ज्यादा उनकी छंटाई से बच निकलते हैं । इस प्रकार भेजे गये संदेशों में यह पता लगाना कि इसे वास्तव में किसने भेजा है और इसमें क्या है ? एक समस्या बनी हुई है । इस समस्या से निपटने के लिए विश्व की तीन बड़ी कंपनियां - अमेरिकन ऑन लाइन, माइक्रोसॉफ्ट तथा याहू ने हाल ही में मिलकर काम करने का निर्णय लिया है । 'ब्राइटमेल' नामक सॉफ्टवेयर कंपनी की एक रिपोर्ट के अनुसार आज इन्टरनेट ई-मेल पर लगभग 40% तक अश्लील साहित्य, सस्ते कैसीनो, सस्ती ड्रग, सस्ते ऋण इत्यादि

से संबंधित सामग्री की भरमार हो गयी है और जल्दी ही यह 50% तक पहुंच सकती है । यह उल्लेखनीय है कि जब ई-मेल की शुरुआत की गयी थी, उस समय जो मानक निर्धारित किये गये थे उनको केवल वैज्ञानिकों-इंजीनियरों को ध्यान में रखकर बनाया गया था । परंतु आज के विभिन्न स्तर के प्रयोक्ताओं को ध्यान में रखकर गोपनीयता से संबंधित एडवोकेट सलाह देते हैं कि हमें ई-मेल का उपयोग सतर्कता के साथ करना चाहिए ।

गोपनीयता व्यक्ति विशेष का अधिकार है जो आज के सभ्य समाज की देन है । इस अधिकार के संरक्षण हेतु विश्वभर में कानून भी हैं । जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि वर्तमान सूचना तकनीकी में कंप्यूटर हार्ड- तथा सॉफ्ट-वेयर की अहम भूमिका है । अत: सूचनाओं की सुरक्षा के लिए इन सॉफ्टवेयरों में विशेष सुरक्षा की व्यवस्था करने की आवश्यकता है । साधारणत: नेटवर्क की अपनी प्रतिरक्षा प्रणाली एवं पासवर्ड (चाबी) से ही प्रयोक्ता के आंकड़े व संदेश सुरक्षित रखने का प्रावधान रहता है । परंतु जब कभी भी कंप्यूटर का उपयोग किया जाता है, तो वायरस या किसी अन्य कारण से आंकड़ों की पूर्ण रक्षा न होने का संदेह बना रहता है । सौभाग्यवश पिछले दो वर्षों में सूचना आश्वसता की संकल्पना में कुछ बदलाव आया है । अब नेटवर्क तथा ऑपरेटिंग प्रणालियों के सुरक्षा कवच के साथ-साथ अनुप्रयोग सॉफ्टवेयर की सुरक्षा का नया प्रावधान बनाया जाता है ।

सॉफ्टवेयर के बचाव के लिए 'वाटरमार्किंग', 'आब्स्फस्केशन' (धुंधलापन) तथा अनुप्रयोग की क्षमता को क्षीण करना जैसे सिद्धांतों का प्रयोग किया जाता है । परिणामस्वरूप साहित्यिक चोरी के प्रयास का संसूचन, चोरी से बचाव और बचाव प्रक्रिया के असफल रहने की दशा में सॉफ्टवेयर में खुद-ब-खुद ऐसे बदलाव की क्षमता क्षीण हो जाय, जैसे कार्य संपन्न होते हैं ।

सॉफ्टवेयर सुरक्षा संबंधी विषय नया है, अत: इस दिशा में कई अनुसंधान कार्यों की आवश्यकता सामने आ रही है । इनका उद्देश्य ऐसे सॉफ्टवेयर तैयार करना है जो बड़ी से बड़ी गणना सामर्थ्य वाले हार्डवेयर पर भी कार्य कर सकें ।

कंप्यूटर तथा नेटवर्क सुरक्षा अथवा साइबर सुरक्षा आज काफी अहम् मुद्दों में से है क्योंकि इसका संबंध देश, संस्थान और घरेलू प्रयोक्ताओं से है । आज के अंकीय समाज (डिजिटल सोसायटी) में गोपनीयता एक उत्तरोत्तर बढ़ती मांग बन गयी है । इसे सितंबर 11, 2001 में विश्व के सबसे अधिक विकसित राष्ट्र - अमरीका में हुई घटना ने और भी अधिक मजबूती दी है । इस तरह की घटनाओं की पुनरावृत्ति न होने पाये अत: इस पहलू को किसी भी कीमत पर गौण नहीं समझा जा सकता है । इस विषय की महत्ता को देखते हुए IEEE की कंप्यूटर सोसायटी ने हाल ही में विभिन्न अनुसंधानों एवं जानकारियों के प्रकाशन हेतु अंतर्राष्ट्रीय स्तर के एक नयी शोध पत्रिका (जर्नल) की शुरुआत की है ।

जैसा पहले भी बताया गया है कि यह पूर्णत: सत्य नहीं होता कि ई-मेल में आपको जो संदेश/सामग्री मिलती है वह उसी व्यक्ति ने भेजा है जिसका नाम उस पर लिखा है । आपके 'पासवर्ड' को चुरा कर, आपके कंप्यूटर से विकृति मनोवृत्ति के लोग इस शक्तिवान तकनीक का दुरुपयोग कर सकते हैं । आज जब ई-मेल संदेश काफी हद तक मान्य हैं, इसलिए सामान्य सूझ बूझ यह बताती है कि इन संदेशों को हमें ज्यों का त्यों स्वीकार नहीं कर लेना चाहिए । सुरक्षा तथा वैधता की दृष्टि से अलग से पूछ तांछ (जांच) अवश्य कर लेनी चाहिए । आवश्यकता इस बात की है कि इस माध्यम का उपयोग सावधानी के साथ करें अन्यथा यह एक व्यसन का रूप लेकर हमारी सर्जनता को भी प्रभावित कर सकता है ।

प्रस्तुत अंक वर्ष 2002 का अक्तूबर-दिसंबर अंक है, इसमें अन्य अंकों की तरह लेख-टिप्पणियां विज्ञान कथा, विज्ञान समाचार इत्यादि सामग्री संजोयी गयी है । पाठकों के सुझावों एवं प्रतिक्रियाओं के लिए हम उनके आभारी हैं तथा 'वैज्ञानिक' के स्तर को बढ़ाने में भविष्य में भी उनके सहयोग की अपेक्षा रखते हैं ।

- डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल

पृष्ठ लेपन प्रौद्योगिकी

कुलवंत सिंह
पदार्थ संसाधन प्रभाग,
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र,
मुंबई - 400 085.

किसी घटक अथवा संरचना के पदार्थ के अंत:गुणों में परिवर्तन के बिना ही पृष्ठीय गुणों में परिवर्तन पृष्ठ लेपन प्रौद्योगिकी द्वारा किया जा सकता है । इस पृष्ठीय विलेपनों के कारण ही आज विभिन्न प्रौद्योगिकी क्षेत्रों में कई नये एवं विस्तृत उपयोगों के द्वार खुल सके हैं । पृष्ठीय गुणों में सुधार एवं पृष्ठ प्रौद्योगिकी के कारण ही विलेपन की कई नयी तकनीकों का विकास हुआ है । इन तकनीकों द्वारा प्राप्त विलेपनों में कई नये एवं उत्तम गुणों का समावेश होता है जिसके कारण लेपित घटकों का अति विपरीत परिस्थितियों में भी उपयोग हो सकता है । सिरामिक आधारित विलेपनों का विकास प्रमुखत: कई उपयोगों के लिए उच्च वाणिज्यिक संभावनाएं समेटे हुए है । उपयोगिता की आवश्यकताओं के आधार पर सही विलेपन का चुनाव संभवत: विलेपन के विभिन्न गुणों जैसे कि उच्च कठोरता, घर्षण प्रतिरोध, संक्षारण एवं ऑक्सीकरण प्रतिरोध, उच्च तापशक्ति, सबस्ट्रेट पर आसंजन इत्यादि को ध्यान में रखकर किया जा सकता है । प्रस्तुत लेख में पृष्ठ लेपन के विभिन्न पहलुओं पर जानकारी देने का प्रयत्न किया गया है ।

हाल के वर्षों में पृष्ठ-लेपन प्रौद्योगिकी की ओर बहुत ध्यान दिया गया है एवं निरंतर इसका उपयोग बढ़ रहा है। इससे घटकों के संक्षारण, घर्षण, श्रांति, ऑक्सीकरण प्रतिरोध तथा अन्य गुणों में सुधार किया जाता है । पूरे विश्व में विभिन्न उद्योगों में यांत्रिकी अपघर्षण तथा संक्षारण के कारण होने वाली हानियों की वजह से काफी नुकसान होता है । इनमें से अधिकांश हानियों को पृष्ठ लेपन प्रौद्योगिकी की वर्तमान एवं विकासशील जानकारी का उपयोग करके काफी कम किया जा सकता है ।

पृष्ठीय अभिलक्षण के आशोधन हेतु कई लेपन निक्षेपण तकनीकें तथा पृष्ठीय उपचार उपलब्ध हैं । यदि पृष्ठ पर पदार्थ को निरूपित किया जाता है तो इस प्रक्रिया को लेपन निक्षेपण प्रक्रिया के रूप में जाना जाता है, एवं यदि पृष्ठ की सूक्ष्मरचना अथवा रसायनिकी में परिवर्तन किया जाता है तो इस प्रक्रिया को पृष्ठोपचार प्रक्रिया के रूप में जाना जाता है । यहां हम केवल लेपन निक्षेपण प्रक्रियाओं पर चर्चा करेंगे । लेपन निक्षेपण (अथवा पृष्ठोपचार) तकनीक का चयन क्रियात्मक आवश्यकताओं, सबस्ट्रेट (आधार) की आकृति, आकार एवं गुणों, लेपन पदार्थ, सुसंगता, आसंजन, लेपन उपस्कर तथा लागत पर निर्भर करता है ।

चित्र-1 में सामान्य रूप से प्रयुक्त होने वाले लेपन निक्षेपण तकनीकों की जानकारी दी गयी है । दृष्टिकोण के आधार पर किसी एक तकनीक को एक या अन्य वर्गों में रखा जा सकता है । वाष्प निक्षेपण तकनीकों का प्रयोग सामान्यत: तनु लेपन (<10 माइक्रोमीटर) के निक्षेपण हेतु किया जाता है जबकि स्थूल (सामान्यत: 50 माइक्रोमीटर एवं अधिक) निक्षेपित करने के लिए कठोर पृष्ठन तकनीकों का प्रयोग किया जाता है । आयन-लेपन तथा कण-क्षेपण जटिल प्रक्रियाएं हैं, जिनमें निर्वात निक्षेपण कक्ष आवश्यक होता है । लेकिन, सामान्यत: इन प्रक्रियाओं द्वारा लेपित घटकों को बाद में किसी अन्य उपचार की आवश्यकता नहीं पड़ती ।

वाष्प निक्षेपण तकनीकों द्वारा किये गये लेपन मूलतः अलंकारी तथा क्रियात्मक प्रकार के होते हैं । अलंकारी लेपन का प्रयोग वाहन यंत्रों, घरेलू साज-सामानों, हार्डवेयर, वेशभूषा, गहनों इत्यादि में व्यापक रूप से किया जाता है । प्रकाशीय यंत्रों पर परावर्तन, परावर्तन रोधी, निस्पंदक तथा किरण पुंज विपाटक लेपन; इलेक्ट्रॉनिक घटकों पर चालकीय, परावैद्युत तथा अर्ध-चालक लेपन; तप्त संक्षारण प्रतिरोधी लेपन वायुयान तथा प्रक्षेपणास्त्र कल-पुर्जों पर; गैस टरबाइन ब्लेड हेतु ऑक्सीकरण प्रतिरोध लेपन तथा कर्तन वेधन एवं अभिरूपण औजारों पर यौगिक लेपन इत्यादि अनेकानेक अनुप्रयोग हैं ।

कठोर लेपन :

जैसे पहले बताया गया है कि सामान्यतः कठोर लेपन तकनीक का प्रयोग 50 माइक्रोमीटर अथवा अधिक स्थूल लेपन करने हेतु किया जाता है । कठोर, विघर्षण प्रतिरोधी पदार्थों का निक्षेपण तापीय फुहार (Thermal Spraying) तथा वेल्डन प्रक्रियाओं द्वारा किया जाता है । तापीय फुहार पद्धति का प्रयोग अधिकांशतः घर्षण एवं संक्षारण रोधी अनुप्रयोगों में होता है । इन प्रक्रियाओं में निक्षेपण के दौरान होने वाली किसी विकुंचता से बचने के लिए सापेक्षिक रूप से स्थूल सबस्ट्रेट (>500 माइक्रोमीटर) की आवश्यकता होती है । वेल्डिन लेपन में केवल उन्हीं सबस्ट्रेटों का प्रयोग कर सकते है जो 700^0 से. का तापमान सहन कर सकते हैं । कई अंतर्निहित लाभों के कारण वैद्युत स्फुलिंग निक्षेपण (Electro Spark Deposition ई.एस.डी.) प्रक्रियाएं इन परंपरागत तकनीकों को अब कुछेक जगह प्रतिस्थापित कर रही हैं । ई.एस.डी. तकनीक में 10^{-5} - 10^{-6} सेकेंड हेतु 10-10,000 इलेक्ट्रिक स्फुलिंग (spark) प्रति सेकेंड उत्पन्न करते हैं । स्पार्क के मध्य अंतराल अवधि 10^{-3}-10^{-1} सेकेंड तक होती है जो कि स्पार्क अवधि से 1000-10,000 गुना अधिक होती है । इससे लाभ यह होता है कि सबस्ट्रेट अधिक गरम नहीं होता है और फलस्वरूप सबस्ट्रेट में कोई विकृति नहीं आती है । इसके अलावा लेपन सूक्ष्मकणित रूप में होते हैं जिससे इनकी कठोरता अधिक होती है और इनमें अधिक एकरूपता पायी जाती है । अतः किसी अन्य निक्षेपित लेपन तकनीक की तुलना में इस प्रक्रिया द्वारा निक्षेपित लेपन बेहतर होते हैं । लेकिन इस तकनीक में यह खामी है कि यह अन्य कठोर लेपन तकनीकों से अपेक्षाकृत अति धीमी है ।

(i) तापीय फुहार लेपन :

इसको प्लाज्मा आर्क फुहार, ज्वाला फुहार, वैद्युत आर्क फुहार अथवा धातुक्षेपण भी कहा जाता है । इन्हें धात्विक तथा अधात्विक लेपन के निक्षेपण हेतु प्रयोग में लाया जाता है । छड़, तार एवं चूर्ण से फुहार द्वारा लेपन किया जा सकता है । इस प्रक्रिया में भरण (लेपन) सामग्री को उच्च तापक्रम के आर्क द्वारा गलाया जाता है और संपीडित वायु अथवा अन्य गैसों के उच्च वेग की सहायता से उन्हें कणित अथवा नोदित कर सबस्ट्रेट पर संघट्ट द्वारा बंधित किया जाता है ।

चूंकि पिघले अथवा आधे-पिघले प्लास्टिक जैसे ये कण जब सबस्ट्रेट पर टकराते हैं, तो निम्नलिखित तीन संभव बंधन प्रक्रियाओं में से किसी एक अथवा अधिक प्रक्रिया द्वारा सबस्ट्रेट पर लेपन बंधन होता है ।

- **यांत्रिक बंधन-** इसमें कण खुरदरी सतह के कारण अंतर्बद्ध हो जाते हैं ।
- **स्थानगत विसरण-** सबस्ट्रेट तथा लेपन के कुछ संयोजनों के कारण स्थानगत विसरण अथवा धातु मिश्रण बन सकते हैं ।
- **वॉन्डरवाल बल** ।

लेपन पदार्थ, प्रक्रिया तथा सबस्ट्रेट संघटन के आधार पर इन बंधन प्रक्रियाओं में से कोई एक अथवा सभी प्रक्रियाएं घटित हो सकती हैं । स्थानांतरित आर्क तथा ज्वलन फुहार व फ्यूज प्रक्रियाओं में कार्य खंड के माध्यम से धातुकी बंधन तैयार किये जाते हैं जो कि काफी मजबूत होते हैं । सभी लेपन अनुप्रयोगों के लिए सबस्ट्रेट की स्वच्छता का होना बंधता के सुनिश्चयन हेतु काफी महत्वपूर्ण है । इन लेपनों के प्रमुख उपयोग इस प्रकार हैं-

- उत्प्रेरक पृष्ठ - सामान्यत: उत्प्रेरक के रूप में प्रयुक्त लेपनों में उच्च सरंध्रता होनी चाहिए, अत: चूर्ण ज्वलन फुहार पद्धति का प्रयोग आम तौर पर इसके लिए किया जाता है ।
- संक्षारण प्रतिरोध- ऑक्सीकरण अथवा लवण जल संक्षारण से संरचनाओं को बचाने हेतु सामान्यत: जिंक अथवा एल्युमिनियम तार की ज्वाला फुहार लेपन का उपयोग किया जाता है ।
- संघारित्र, प्रतिरोध तापक, भूसंपर्कक जैसे अनुप्रयोगों में वैद्युत संपर्कों के लिए धातुओं का प्रयोग प्लाज्मा आर्क तथा प्लाज्मा फुहार पद्धतियों द्वारा किया जाता है ।
- प्रेरण तापन कुंडलियों, उच्च तापक्रम विकृत मापी तथा परावैद्युत परतों में विद्युत रोधी परतों के रूप में ऑक्साइड लेपनों के प्रयोग के लिए व्यापक रूप से प्लाज्मा आर्क तथा ज्वलन फुहार पद्धतियों का प्रयोग किया जाता है ।
- वैद्युत चुंबकीय अथवा रेडियो आवृत्ति व्यतिकरण (Interference) जो इलेक्ट्रॉनिक घटकों को क्षति पहुंचा सकते हैं अथवा निम्न स्तर के संकेतों में अंतर्क्षेप करते हैं, को मितव्ययी रूप से इलेक्ट्रॉनिक आर्क फुहार का उपयोग करते हुए शील्डिंग द्वारा कम किया जा सकता है । जिंक, टिन तथा अन्य कम गलनांक वाले पदार्थों की तनु फुहार परतें शील्डिंग हेतु उपकरणों के प्लास्टिक अथवा फाइबर ग्लास कैबिनटों की आंतरिक सतहों के ऊपर प्रयुक्त की जाती हैं ।
- नाभिकीय रिएक्टर में प्रयोग हेतु कई तापीय फुहार लेपनों को अनुमोदित किया गया है । नियंत्रण छड़ चालक (Control Rod Drive) सील हेतु प्लाज्मा आर्क फुहार संवर्धित ऑक्साइड विघर्षण पृष्ठ एक ऐसा ही उदाहरण है ।
- निकिल व कोबाल्ट बेस तथा निकिल, कोबाल्ट व क्रोम मिश्र धातुओं को प्राय: ताप उपचार अनुलग्नों तथा रेचन घटकों पर ऑक्सीकरण बचाव हेतु प्रयोग किया जाता है ।
- तनु ऑक्साइड लेपन की पृथक्कारक परत हॉट आइसोस्टेटिक प्रेस मैंड्रिल (Hot Isostatic Press Mandrel) (दंडक) तथा गढ़े जा रहे घटक के बीच प्रयोग की जाती है ।
- जिर्कोनिया, मैग्नीसिया तथा अल्युमिनियम ऑक्साइड का प्रयोग अकेले या संयुक्त रूप से तापरोधी बचाव हेतु तथा राकेट इंजिनों व अन्य ऐसे उच्चतापी घटकों में धातु तापक्रमों व शीतलन आवश्यकताओं को कम करने तथा तापीय प्रणालियों की दक्षता को बढ़ाने हेतु किया जाता है ।
- अनुप्रयोगों के अन्य क्षेत्रों में तापीय चालन लेपन, क्रोम निकिल-बोरॉन मिश्रधातु अथवा कार्बाइड युक्त अपघर्षण प्रतिरोधी लेपन शामिल हैं ।

तापीय फुहार लेपन तैयार करने हेतु विभिन्न विधियां हैं । ये विधियां ज्वलंत फुहार, फुहार एवं फ्यूज, वैद्युत आर्क फुहार तथा प्लाज्मा आर्क प्रक्रियाओं पर आधारित हैं । प्लाज्मा आर्क प्रक्रियाएं उच्च तापक्रमों एवं उच्च पावडर कण वेगों को उत्पन्न करती हैं । प्लाज्मा आर्क फुहार लेपन उच्च घनत्व तथा अधिक बंधन शक्ति दर्शाते हैं । चित्र -2 में प्रतिरूपी प्लाज्मा आर्क फुहार मशीन (गन) को दर्शाया गया है । चित्र-3 में स्थानांतरित आर्क प्लाज्मा प्रक्रिया प्रदर्शित है । जिसमें प्लाज्मा तथा सबस्ट्रेट के बीच द्वितीयक धारा द्वारा तापन तथा गलन हेतु सबस्ट्रेट सतह पर उक्त आर्क का स्थानांतरण किया जाता है । इससे उपयुक्त आसंजन (धात्विक बंधन), उच्च घनत्व लेपन, उच्च निक्षेपण दरें तथा उच्च स्थूलता प्रति प्रविष्ट जैसे उपयुक्त लाभ हैं ।

(ii) वैद्युत स्फुलिंग (स्पार्क) निक्षेपण :

इस प्रक्रिया में टंगस्टन, टाइटेनियम अथवा क्रोमियम के कार्बाइडों अथवा परिशुद्ध धातु जैसे निकिल, कोबाल्ट कॉपर आदि एवं इनके मिश्र धातु पदार्थों का लेपन 10-10000 प्रति सेकेंड आवृत्तियों पर वैद्युत स्पार्क के जरिए किया जाता है । स्पार्क के बीच अंतराल अवधि 10^{-3}-10^{-1} से. तक परिवर्तित होती है अत: उक्त पदार्थ इस अंतराल अवधि में तीव्रता से ठंडे हो जाते हैं और

लेपन

(अ) - कठोर पृष्ठन

- तापीय फुहार - ज्वाला, फुहार तथा संगलन, इलेक्टिक आर्क अधिस्फोटन गन, निम्न दाब प्लाज्मा
- वेल्डिंग - ज्वाला, इलेक्टिक आर्क, प्लाज्मा आर्क
- क्लैडिंग - विसरण, लेसर, वेल्डिंग, झालन (ब्रेजिंग)
- वैद्युत-स्पार्क - वैद्युत स्पार्क निक्षेपण (ई एस डी.)

(ब) - वाष्प निक्षेपण

- भौतिकीय वाष्प निक्षेपण (पी वी डी) - वाष्पन, आयन प्लेटिंग, कण-क्षेपण
- रासायनिक वाष्प निक्षेपण (सी वी डी) - सी वी डी अपचयन, विघटन
- संयुक्त वाष्प निक्षेपण (पी ए सी वी डी) - प्लाज्मा सहाय्यित सी वी डी, अभिक्रित स्पंदित प्लाज्मा, प्लाज्मा बहुलीकरण

(स) - अन्य तकनीकें

- वैद्युत लेपन
- अवैद्युतीय लेपन
- ऐनीडीकरण
- तप्त निमज्जन
- पेंटिंग
- वैद्युत कण संचलन
- रासायनिक परिवर्तन
- अंतर्धात्विक लेपन
- सॉल जैल

चित्र - 1 : सामान्यत: प्रयुक्त लेपन निक्षेपण तकनीकें

सबस्ट्रेट के तापमान में अधिकता न आने की वजह से इसमें कोई विकृति नहीं आती है । इसके अलावा लेपन सूक्ष्म कणों से निर्मित होते हैं, जिनसे कठोरता उच्च होती हैं, तथा इनमें अधिक एकरूपता पायी जाती है । इससे अन्य तकनीकों द्वारा निक्षेपित समान लेपनों की तुलना में इस तकनीक द्वारा लेपन में बेहतर गुण प्राप्त होते हैं । अपघर्षण, ऑक्सीकरण, संक्षारण, विक्षति तथा कणपाटन प्रतिरोध को सुधारने हेतु कटिंग उपसाधन, मशीन उपसाधन, अभिरूपण साधन, फोर्जिंग-डाई, मोल्डिंग उपसाधन तथा अन्य घटकों पर व्यापक रूप से इस तकनीक का प्रयोग हो रहा है ।

वाष्प निक्षेपण :

वाष्प निक्षेपण प्रक्रियाओं का प्रयोग कई मृदु तथा कठोर लेपनों के निक्षेपण के लिए किया जाता है । ये तकनीकें महत्वपूर्ण लोचता तथा उच्च आसंजन युक्त तनु लेपन (<10 माइक्रोमीटर) के निक्षेपण हेतु उपयुक्त हैं । वाष्प निक्षेपण प्रक्रियाओं में वाष्पन प्रक्रिया को छोड़कर विलेपनों का बंधन प्राय: काफी अच्छा होता है । वाष्पन में लेपनों का सबस्ट्रेट पर बंधन अन्य वाष्प निक्षेपण प्रक्रियाओं की तुलना में कम होता है । तथापि वाष्पन एक उच्च लेपनदर प्रक्रिया है । अधिकांश वाष्प निक्षेपण प्रक्रियाएं जटिल होती हैं जिनमें निर्वात कक्षों की आवश्यकता होती है । सी वी डी प्रक्रियाओं में ऐसे ही सबस्ट्रेटों को प्रयुक्त किया जा सकता है जो उच्च तापक्रम (800^0 सें. अथवा अधिक) सह सकें । तथापि निम्नदाब प्लाज्मा सहाय्यित सी वी डी **(Plasma Assisted Chemical Vapour Deposition)** में काफी कम तापक्रमों पर भी लेपन किये जा सकते हैं ।

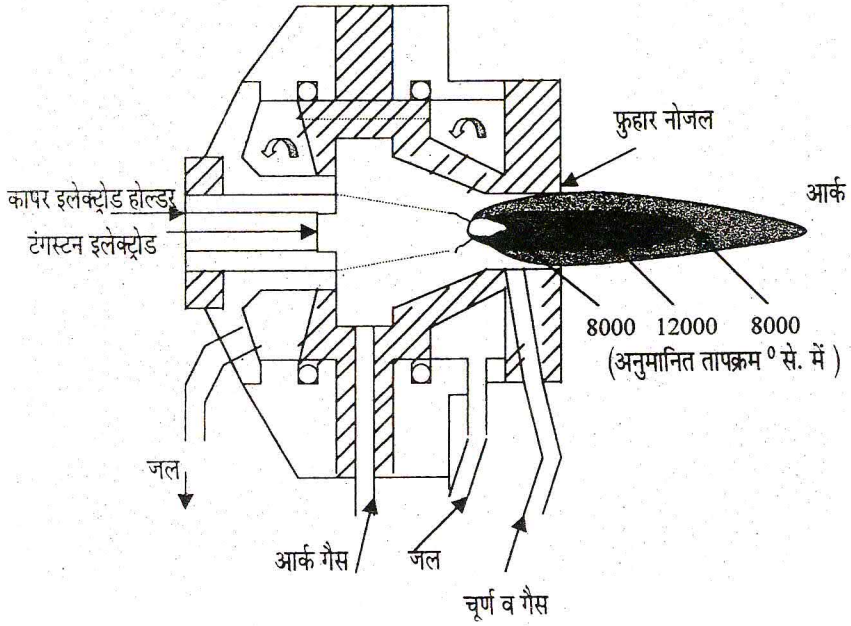

चित्र - 2 : प्लाज्मा आर्क फुहार गन

भौतिकीय वाष्प निक्षेपण (Physical Vapour Deposition, PVD) :

सबस्ट्रेट पर परमाणुओं की सहायता से अर्थात् परमाण्विक रूप से उच्च निर्वात पर (10^{-8}-10^{-1} टॉर) वाष्पों के संघनन द्वारा लेपन पी वी डी में किया जाता है।

(क) वाष्पन - वाष्पन प्रक्रिया में स्रोत पदार्थ को निर्वात (10^{-8}-10^{-2} टॉर) में 1000-2000^0 सें. (पदार्थ के आधार पर) तक गर्म कर वाष्प में परिवर्तित किया जाता है । पदार्थ का वाष्प दाब परिवेशी दाब से काफी अधिक रखा जाता है ताकि संघनन के लिए पर्याप्त मात्रा में वाष्प मौजूद हो । लेपन पदार्थ वैद्युत रूप से उदासीन अवस्था में होता है तथा 0.1-0.3 इलेक्ट्रॉन वोल्ट (eV) की तापीय ऊर्जा पर स्रोत के पृष्ठ से इनके कणों का निष्कासन होता है । सबस्ट्रेट को लेपन आसंजन के सुनिश्चयन तथा उपयुक्त लेपन संरचना तथा गुणों को प्राप्त करने हेतु निश्चित रूप से पूर्वतापित (200-1600^0 सें. तक) किया जाना चाहिए ।

अभिक्रियाशील गैसों की उपस्थिति में होने वाले वाष्पन को अभिक्रियाशील वाष्पन कहते हैं तथा यौगिक लेपन तैयार करने हेतु इसका प्रयोग किया जाता है । कभी कभी प्रतिकारकों के बीच प्रतिक्रिया संवर्धन हेतु अथवा वाष्पचरण में लेपनधातु एवं गैस परमाणुओं दोनों के आयनीकरण हेतु 10^{-4}-10^{-2} टॉर की दाब सीमा में अभिकृत वाष्पन में प्लाज्मा को शामिल किया जाता है । इस प्रक्रिया को सक्रियित अभिक्रियाशील वाष्पन (Activated Reaction Evaporation, ARE) के नाम से जाना जाता है ।

स्रोत पदार्थ चूर्ण, तार अथवा छड़ के रूप में प्रयुक्त हो सकते हैं । स्रोत पदार्थ को गर्म करने हेतु विभिन्न तकनीकों का प्रयोग किया जा सकता है । इनमें प्रत्यक्ष प्रतिरोध तापन, उत्प्रेरण तापन, इलेक्ट्रॉन पुंज तापन, निर्वात आर्क तथा लेसर तापन इत्यादि शामिल हैं । प्रत्यक्ष प्रतिरोध तापन तकनीक वाष्पन हेतु बहुधा प्रयुक्त तकनीक है । सरलतम स्रोतों के अंतर्गत विभिन्न प्रकार के प्रतिरोध तार एवं धातु पणिका होते हैं (चित्र-4) । सामान्यतः ये टंगस्टन, मॉलीब्डेनम तथा टैंटलम जैसे उच्च गलनांक वाले धातुओं से बनाये जाते हैं । वाष्पन हेतु पदार्थ रखने

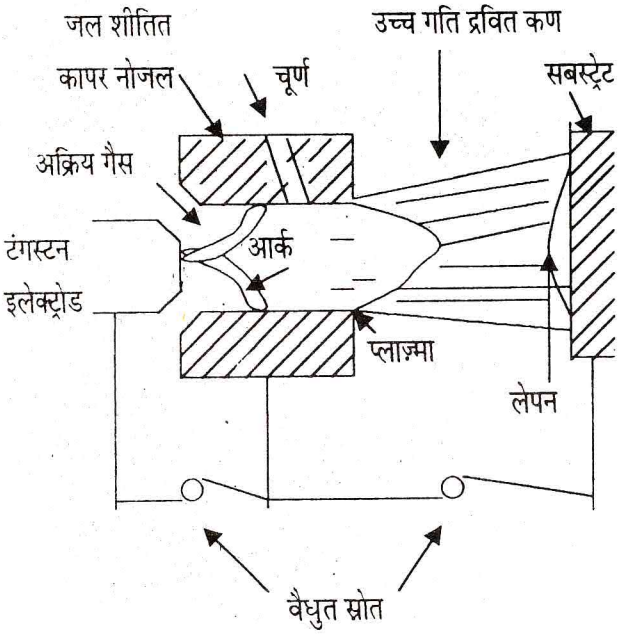

चित्र - 3 : स्थानांतरित आर्क प्लाज्मा फुहार

एवं तापन के दोहरे उद्देश्य से तंतु अपनी भूमिका अदा करते हैं। निम्न गलनांक ($<1200^0$ सें.) वाले पदार्थों के निक्षेपण हेतु प्रतिरोध एवं प्रेरण तापन का प्रयोग किया जाता है। उच्च गलनांक वाले दुर्गलनीय पदार्थों के लिए इलेक्ट्रॉन पुंज तापन की आवश्यकता पड़ती है, जोकि 3500^0 सें. तक के गलनांक वाले दुर्गलनीय पदार्थों के निक्षेपण हेतु प्रयुक्त किये जा सकते हैं।

वाष्पन प्रक्रिया अन्य निर्वात निक्षेपण प्रक्रियाओं की तुलना में सरल एवं किफायती है। वाष्पन दरें 25 माइक्रोमीटर प्रति मिनट से भी अधिक पहुंच सकती हैं। एक मिमी तक लेपनों अथवा स्वावलंबी संरचनाओं का निक्षेपण इनके द्वारा किया जा सकता है। वाष्पित पदार्थ कणों की निम्न गतिज ऊर्जा के कारण लेपनों का सबस्ट्रेट /अथवा घटकों पर आसंजन इस पद्धति में सापेक्षिक रूप से कम होता है।

(ख) आयन विद्युत लेपन - इस प्रक्रिया में धातु वाष्प का आंशिक आयनीकरण सबस्ट्रेट पर लेपन के आसंजन में वृद्धि करने के लिए किया जाता है। निक्षेपण के दौरान, सबस्ट्रेट सतह अथवा निक्षेपित लेपन पर उच्च ऊर्जा वाले आयनों एवं कणों द्वारा बमबारी कर, बमबारी रहित निक्षेपणों की तुलना में अंतरपृष्ठीय क्षेत्रों एवं लेपन के गुणों में परिवर्तन किया जाता है। आयन विद्युत लेपन को प्रयुक्त आयनीकरण के स्रोत के आधार पर दो श्रेणियों में विभाजित किया गया है।

(i) दीप्त विसर्जन (प्लाज्मा) आयन विद्युत लेपन - आयन विद्युत लेपन 10^{-3}-10^{-1} टॉर के निम्न निर्वात में किया जाता है। निक्षेपित किये जाने वाले पदार्थ को सरल रूप से वाष्पित किया जाता है एवं सबस्ट्रेट तक पहुंचने के लिए वह वाष्प मार्ग में गैसीय दीप्त विसर्जन के माध्यम से गुजरता है, अत: वाष्पित परमाणु प्लाज्मा में आयनीकृत हो जाते हैं। वाष्प आयनों का संघनन उच्च ऋणात्मक विभव के प्रभाव में सबस्ट्रेट पर किया जाता है (चित्र-5)। सबस्ट्रेट विशिष्ट रूप से 2-5 किलोवोल्ट के ऋणात्मक विभव पर रखा जाता है। कुचालक पृष्ठों हेतु आर एफ (Radio Frequency, RF) विभव का प्रयोग किया जाता है।

(ii) आयन पुंज आयन विद्युत लेपन - इस प्रक्रिया में निक्षेपण उच्च निर्वात (10^{-7}-10^{-4} टॉर) में किया जाता है तथा आयन बमबारी स्रोत एक बाह्य आयनीकरण स्रोत (गन) होता है। ये एकल अथवा गुच्छ आयन पुंजों का उपयोग करते हैं। आयन पुंज लेपन पदार्थों के आयनित कण अथवा निष्क्रिय गैस आयन हो सकते हैं। वाष्पन प्रक्रिया की तरह इस प्रक्रिया में भी लेपन के प्रकार के आधार पर व्यापक रूप से वाष्प स्रोतों में विद्युत प्रतिरोध, आर एफ (RF) उत्प्रेरण, इलेक्ट्रॉन पुंज अथवा कैथोडिक आर्क तथा धातु युक्त गैस या हाइड्रोकार्बन गैसों द्वारा वाष्पन किया जा सकता है। अभिक्रियाशील गैस अथवा वांछित आयनीकृत कणों के पुंज का प्रयोग मिश्र धातु अथवा यौगिक बनाने हेतु किया जा सकता है। इसको अभिक्रियाशील आयन विद्युत लेपन के रूप में जाना जाता है। इस प्रक्रिया में निक्षेपित आयनों की अत्यधिक

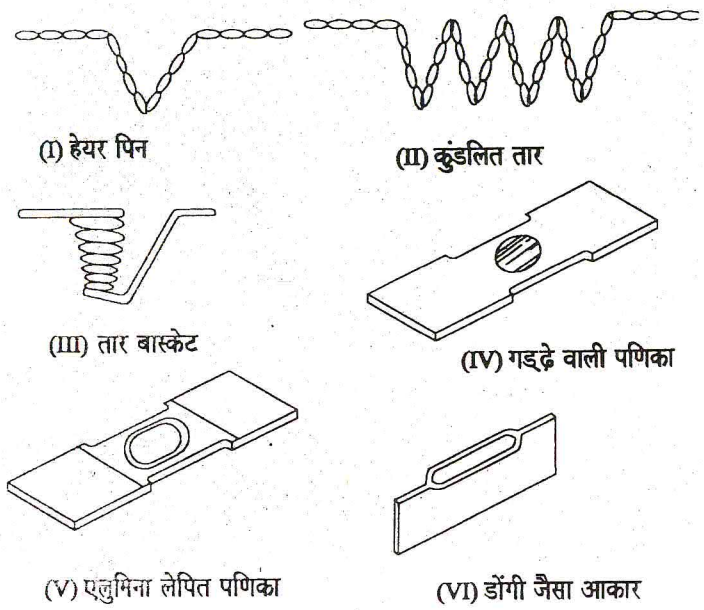

चित्र - 4 : वाष्पन हेतु विभिन्न तार एवं धातु पणिका स्रोत

ऊर्जा (100 इले.वो.) के कारण अन्य वाष्प निक्षेपण प्रक्रियाओं की तुलना में निम्न तापक्रमों के बावजूद आयनपुंज आयन लेपित निक्षेपणों में आसंजन सबसे अच्छा होता है। हालांकि आयनपुंज निक्षेपण प्रक्रियाओं में दीप्त विसर्जन निक्षेपण प्रक्रियाओं की तुलना में निक्षेपण दरें कम होती हैं।

(ग) कण क्षेपण - वाष्प निक्षेपण की यह एक व्यापक प्रचलित तकनीक है। कण क्षेपण में, लेपन पदार्थ ऊर्जात्मक कणों द्वारा ठोस पृष्ठ (लक्ष्य) से विस्थापित एवं निष्कासित किया जाता है। निष्क्रिय गैस (प्रायः आर्गन) से दीप्त विसर्जन का निर्माण किया जाता है। ये आयन ठोस सतह (लक्ष्य) पर प्रयुक्त उच्च ऋणात्मक विभव के प्रभाव में उच्च ऊर्जा से ठोस (लक्ष्य) पर टकराते हैं। कणक्षेपित पदार्थ स्रोत (लक्ष्य) से प्रमुखतः परमाणु रुप में निकलते हैं। सबस्ट्रेट को कोष्ठ (Chamber) में लक्ष्य के सामने इस प्रकार रखा जाता है कि क्षेपित कण आसानी से इस पर पहुंचकर जमा हो सकें। कण क्षेपण में 10^{-3}-10^{-1} टॉर की दाब सीमा पर दीप्त विसर्जन उत्पन्न किया जाता है। जबकि आयन किरण पुंज में आयनों का उत्पादन 10^{-7}-10^{-4} टॉर दाब पर किया जाता है। आयन पुंज कण-क्षेपण प्रक्रिया में आयन बमबारी स्रोत एक वाह्य आयनीकरण स्रोत होता है। आयन पुंज कण क्षेपण में गतिज ऊर्जा तथा धारा घनत्व को स्वतंत्र रुप से नियंत्रित किया जा सकता है। चित्र-6 में एक दिष्ट धारा (DC) दीप्त विसर्जन कण-क्षेपण प्रणाली की योजना को दिखाया गया है।

दीप्त विसर्जन कण-क्षेपण में बमबारी आयनों की ऊर्जाएं 100-1000 इले. वोल्ट तक होती हैं जबकि वाह्य आयन किरण पुंज स्रोतों में यह 100 इले. वो. से 10 किलो इले.वो. (keV) तक होती हैं। कण क्षेपण में क्षेपित परमाणुओं की औसत ऊर्जा लगभग 10-40 इले. वोल्ट तक होती हैं। अतः कण क्षेपण प्रक्रिया सापेक्षिक रुप से वाष्पन की तुलना में उच्च ऊर्जा प्रक्रिया है। चूंकि लेपन पदार्थ रासायनिक अथवा तापीय प्रक्रिया के स्थान पर यांत्रिकी साधनों द्वारा वाष्पित किया जाता है, इसलिए वास्तविक रुप से कोई भी पदार्थ कण क्षेपित लेपन के लिए उपयुक्त है। इस प्रक्रिया की यह एक बहुत बड़ी विशेषता है।

(घ) मैग्नेट्रॉन कण क्षेपण - मैग्नेट्रॉन विसर्जन प्रणालियों का महत्व कण क्षेपण में लगातार बढ़ रहा है । मैग्नेट्रॉन विसर्जन प्रणाली चित्र-7 में दर्शायी गयी हैं । यह एक ऐसी कण-क्षेपण प्रणाली है जिसमें मैग्नेट्रॉन शामिल होता है । इसमें इलेक्ट्रॉन पाश बनाने हेतु कैथोड पृष्ठ के सहयोग से चुंबकीय क्षेत्र का प्रयोग किया जाता है । जो कि इस प्रकार संरूपित रखते हैं कि ExB इलेक्ट्रॉन अपवाह धारा अपने आप में ही एक बंद लूप में प्रवाहित हो सके । दीप्त विसर्जन के दौरान लक्ष्य पृष्ठ पर आयन बमबारी करते हैं फलस्वरूप द्वितीयक इलेक्ट्रॉनों का उत्सर्जन होता है । लक्ष्य पृष्ठ पर लंबित चुंबकीय क्षेत्र इन द्वितीयक इलेक्ट्रॉनों को संरेखीय मार्ग के स्थान पर कुंडलित मार्ग का अनुसरण करने हेतु बाध्य करता है । इस कुंडलित मार्ग की त्रिज्या (r) को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है -

$$r = \frac{Mv \sin\theta}{eB}$$

जहां

m - इलेक्ट्रॉन द्रव्यमान

v - इलेक्ट्रॉन वेग

θ - उत्सर्जन कोण

e - इलेक्ट्रॉन आवेश

B - चुंबकीय फ्लक्स घनत्व

इसका प्रभाव यह होता है कि यह इलेक्ट्रॉनों को पाशित कर देता है एवं उनके मार्ग की लंबाइयां काफी बढ़ जाती हैं । जिसके कारण आयनीकरण एवं कण क्षेपण दरें भी बढ़ जाती हैं । मैग्नेट्रॉन कण-क्षेपण परंपरागत डायोड कण-क्षेपण से अलग होता है जो निम्न दाब ($4\text{-}20 \times 10^{-3}$ टॉर) पर प्रचालित होता है, जबकि डायोड कण क्षेपण $10^{-2}\text{-}10^{-1}$ टॉर के दाब पर किया जाता है । अतः मैग्नेट्रॉन कण क्षेपण से निम्न लाभ होते हैं -

- निक्षेपित फिल्मों में न्यूनतर अशुद्धताएं एवं निष्क्रिय गैस
- कण-क्षेपित परमाणुओं की उच्च ऊर्जा (10-100 इले.वोल्ट) के कारण बेहतर आसंजन तथा
- निक्षेपण दर में वृद्धि

रासायनिक वाष्प निक्षेपण (Chemical Vapour Deposition, CVD) :

रासायनिक वाष्प निक्षेपण प्रक्रिया में लेपन पदार्थ के वाष्पशील घटक का प्रयोग करते हैं जो तप्त सबस्ट्रेट पर या तो तापीय रूप से विघटित अथवा रासायनिक रूप से अभिक्रिया करते हैं । रासायनिक अभिक्रिया हेतु तापक्रम आवश्यकतानुसार 200^0 से 2000^0 से. तक अथवा इससे भी अधिक हो सकता है । निक्षेपण कार्य वायुमंडलीय दाब (760 टॉर) अथवा कम दाब (>0.5 टॉर) पर किया जा सकता है । निम्न वायुमंडलीय दाब पर किये जाने वाले निक्षेपण को निम्न दाबीय सीवीडी कहा जाता है । सबस्ट्रेट को वैद्युतीय प्रतिरोध, प्रेरकत्व अथवा इन्फ्रारेड द्वारा गर्म किया जा सकता है । निम्न दाब पर सीवीडी प्रक्रिया में वृहत् सबस्ट्रेट क्षेत्र पर उत्कृष्ट गुणवत्ता तथा समरूप लेपन होता है ।

सीवीडी प्रक्रिया बहुमुखी तथा लचीली है । उच्च निक्षेपण दरें मिलती हैं तथा उत्तम आसंजन भी मिलता है । उच्च सबस्ट्रेट तापक्रम की आवश्यकता इसके अनुप्रयोगों को परिसीमित करती है ।

संयुक्त अथवा प्लाज्मा सहायित रासायनिक वाष्प निक्षेपण :

ये संकर प्रक्रियाएं हैं जो सीवीडी प्रक्रियाओं को सक्रिय बनाने हेतु प्लाज्मा अथवा दीप्त विसर्जन का प्रयोग करते हैं । इन्हें प्लाज्मा सहायित रासायनिक वाष्प निक्षेपण (PACVD) कहा जाता है । ये प्रक्रियाएं महत्वपूर्ण रूप से दीप्त विसर्जन प्लाज्मा (0.01-5 टॉर) द्वारा उत्पादित उच्च ऊर्जा इलेक्ट्रॉनों की रासायनिक बंधनों को तोड़ने की क्षमता के कारण सबस्ट्रेट तापक्रम की आवश्यकता को $100\text{-}600^0$ से. तक कम कर देती हैं तथा रासायनिक अभिक्रियाओं को प्रोन्नत करती हैं ।

अभिक्रियाशील स्पंदित प्लाज्मा निक्षेपण प्रक्रिया में सतत विसर्जन के स्थान पर एक उच्च ऊर्जा स्पंदित प्लाज्मा का प्रयोग किया जाता है जिसके कारण सबस्ट्रेट के तापक्रम को कमरे के तापक्रम पर रखा जा सकता है । दो अक्षीय इलेक्ट्रोडों के मध्य विसर्जन का प्रारंभ 0.1-1 टॉर दाब पर संधारित्र को विसर्जित कर किया

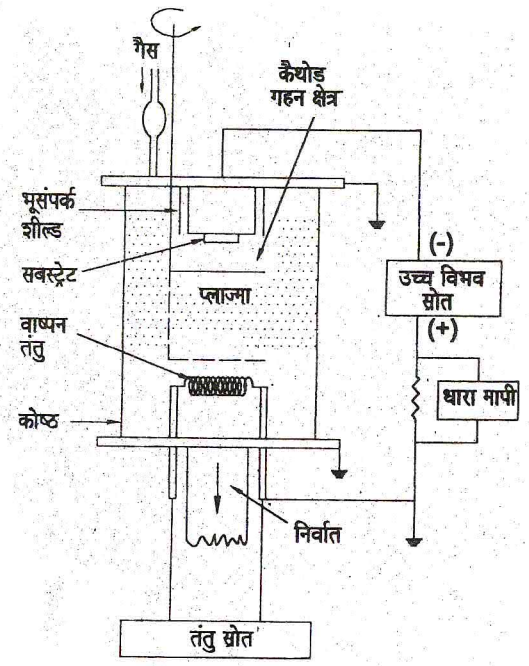

चित्र - 5 : प्लाज्मा आयन विद्युत लेपन निकाय

जाता है । स्पंदित प्लाज्मा में उत्पन्न उच्च तापक्रम इलेक्ट्रोड पदार्थ को वाष्पित एवं अपक्षरित करता है जो कि प्लाज्मा में संप्रेषित गैस से क्रिया कर यौगिक बनाते हैं । जिनका सबस्ट्रेट पर लेपन होता है ।

सीवीडी प्रक्रियाओं के लाभ -

- दुर्गलनीय पदार्थों का उनके गलनांक या सिंटरिंग तापक्रमों से काफी नीचे के तापक्रम पर निक्षेपण संभव ।
- निक्षेपों का सैद्धांतिक तथा नियंत्रित घनत्व संभव । रेणु (grains) अभिविन्यास, वरीयता एवं आकार पर नियंत्रण ।
- ऐपीटैक्सीय (Epitaxial) रेणु संवर्धन संभव

सीमाएं -

- कुछ अभिकारकों की उच्च लागत ।
- संक्षारक, विषाक्त अथवा आर्द्र संवेदी अभिकारकों का हस्तन ।
- पदार्थ की निम्न प्रयुक्तता ।

प्लाज्मा बहुलीकरण

इस प्रक्रिया में कार्बनिक एवं अकार्बनिक बहुलक परतों का इलेक्ट्रॉन पुंज, पराबैंगनी विकिरण (UV) अथवा दीप्त विसर्जन का उपयोग कर एकल वाष्पों से निक्षेपण किया जाता है । उत्तम कुचालक फिल्में इस पद्धति द्वारा तैयार की जाती हैं ।

अन्य तकनीकें :

विद्युत लेपन :

यह धातुओं के निक्षेपण की आसान पद्धति है । वैद्युत निक्षेपण, अभियांत्रिकी की सभी शाखाओं में सुस्थापित एक महत्वपूर्ण लेपन पद्धति है । इस प्रक्रिया में धातुओं का उनके लवण के जलीय घोल से विद्युत धारा प्रवाह द्वारा निक्षेपण किया जाता है । जिस वस्तु पर निक्षेपण किया जाना है उसे कैथोड के रूप में निर्मित किया जाता है जबकि निक्षेपित किया जाने वाला पदार्थ एनोड के रूप में तैयार किया जाता है ।

तालिका - 1 : कुछ निक्षेपण प्रक्रियाओं के अभिलक्षण

गुण	वाष्पन	आयन लेपन	कण क्षेपण	सीवीडी CVD	वैद्युत लेपन	तापीय फुहार
उत्पादन प्रक्रिया	तापीय	तापीय	संवेग अंतरण	रासायनिक अभिक्रिया	घोल से निक्षेपण	ज्वाला/प्लाज्मा
निक्षेपित कण	परमाणु एवं आयन	परमाणु एवं आयन	परमाणु एवं आयन	परमाणु	आयन	सूक्ष्मकण
निक्षेपण दर	उच्च	उच्च	कम	मध्य	निम्न-उच्च	अति उच्च
निक्षेपण तापक्रम (^{0}सें.)	200-1600	200-1600	100-500	200-2200	< 100	100-150
मोटाई सीमा (माइक्रोमीटर)	0.1-1000	0.2-10	0.2-10	0.5-1000	1-5000	50-500
लेपन सामग्री	कोई भी	कोई भी	कोई भी	कोई भी	सीमित	कोई भी
निक्षेपित कण ऊर्जा (इले. वोल्ट)	निम्न (0.1-0.5)	(1-100) उच्च	(1-100) उच्च	(प्लाज्मायुक्त) उच्च	उच्च संभव	उच्च संभव
सापेक्षिक आसंजन	अनुकूल-अच्छा	अच्छा-उत्तम	अच्छा-उत्तम	उत्तम	अच्छा	अनुकूल-अच्छा

इस निकाय (सेल) में विद्युत धारा प्रवाहित करते ही एनोड का वैद्युत रासायनिक विलयन होने लगता है जो सबस्ट्रेट (कैथोड) पर लेपित हो जाता है। वस्तु को निक्षेपण से पूर्व साफ किया जाता है। कार्बनिक घोल अथवा तप्त क्षारीय घोल में डुबाकर ग्रीज़ तथा गंदगी को हटाया जाता है; जंग अथवा ऑक्साइड परत को वायर ब्रशिंग, सैंड ब्लास्टिंग अथवा अम्लोपचार द्वारा हटाया जाता है। वैद्युत विश्लेषण निमज्जन का भी उपयोग किया जा सकता है। कैथोड पर हुए निक्षेपण की प्रकृति संघटन, तापक्रम, सांद्रता तथा pH एवं वैद्युत घनत्व द्वारा प्रभावित होती है।

लवण मिश्रण तथा दो या अधिक एनोडों का प्रयोग करके दो या अधिक धातुओं अथवा मिश्रधातुओं का सह निक्षेपण संभव है। धातु मैट्रिक्स में अघुलनशील कठोर कण वाले संघटक पदार्थ को विलोडित वैद्युत अपघटन घोल के निलंबन द्वारा सह-निक्षेपित किया जा सकता है।

वैद्युत कण संचलन :

वैद्युत कण संचलन लेपन विधि वैद्युत निक्षेपण प्रक्रिया के समान ही है, पर यह मुख्यत: आयनों के बदले कोलाइडी कणों के निक्षेपण से संबंधित है। कोलाइडी कण निलंबन की स्थिति में रहते हैं, इसका एक कारण यह भी है कि वे वैद्युत आवेशित होते हैं। लेपित की जाने वाली वस्तु को जलीय परिक्षिप्त घोल में डुबोया जाता है, यह घोल ऋणात्मक रूप से आवेशित कोलाइडी कणों तथा धनात्मक आयनों के रूप में वियोजित हो जाता है। जब विद्युत को कोलाइडी घोल से गुजारा जाता है, तो आवेशित कण धनात्मक इलेक्ट्रोड (ऐनोड) पर अभिगमन करते हैं, जहां वे स्थूल पुंजों का निर्माण करते हैं तथा निक्षेपित हो जाते हैं। सामान्यत: वैद्युत कण संचलन

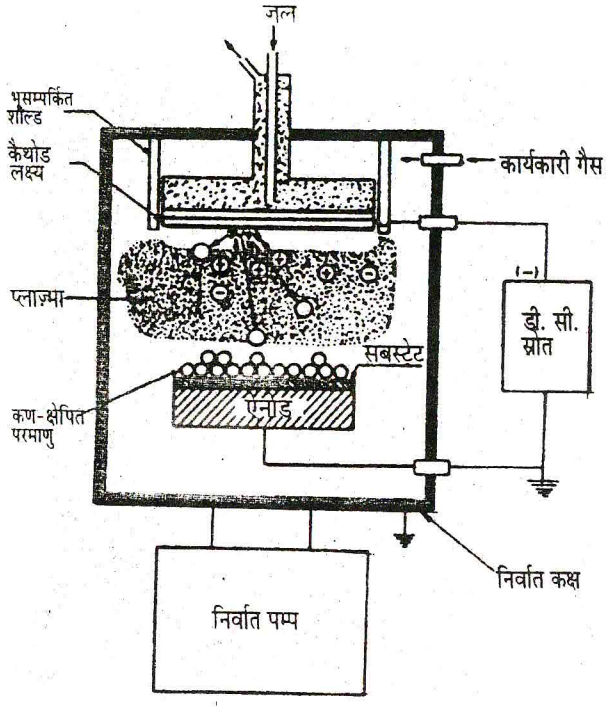

चित्र - 6 : दीप्त विसर्जन कण-क्षेपण

पद्धति का प्रयोग औद्योगिक रंगों (पेंटों) के अनुप्रयोगों के रूप में किया जाता है, जहां इसे बाद में सिंकाई कर सुखाने की आवश्यकता पड़ती है ।

अवैद्युतीय लेपन (रासायनिक निक्षेपण) :

अवैद्युतीय निक्षेपण वैद्युत लेपन से अलग है जिसमें कोई वाह्य विद्युत प्रवाह नहीं किया जाता । इस प्रक्रिया द्वारा धात्विक लेपन का प्रयोग किसी अपचायक द्वारा समांगी रासायनिक उपचयन अथवा जलीय घोल में धातु आयनों के स्वउत्प्रेरित रासायनिक अपचयन के माध्यम से किया जाता है । निकिल-फॉस्फोरस (Ni-P) जैसी धातु के कठोर लेपन तथा अवैद्युतीय निकिल मैट्रिक्स में अति सूक्ष्म कठोर परिक्षेपित कणों के संयुक्त लेपन का सामान्यत: प्रयोग अपघर्षण अनुप्रयोगों हेतु किया जाता है ।

वैद्युत निक्षेपण की तुलना में अवैद्युतीय निक्षेपण का लाभ यह है कि निक्षेपणों में अधिक एकरूपता, निम्न सरंध्रता तथा अधिक संक्षारण प्रतिरोध होता है । जटिल आकारों को भी लेपित किया जा सकता है । लेकिन यह प्रक्रिया अपचायक तथा सम्मिश्रण कारकों की लागत के कारण विद्युत लेपन से कहीं अधिक खर्चीली है ।

रासायनिक रूपांतरण लेपन :

इस प्रक्रिया में, धातु सतह की बाह्य परमाणु परतों की मूल सतह को विभिन्न गुणों वाले नये अधात्विक लेपनों में रूपांतरित किया जाता है । यह कार्य स्वस्थान पर ही कृत्रिम वातावरण द्वारा प्रेरित अभिक्रिया के माध्यम से किया जाता है । जिसमें इसकी बाह्य धात्विक परत को यौगिक में परिवर्तित किया जाता है । इन लेपनों में अंतर्पृष्ठ ग्रेडित होता है । इस प्रक्रिया द्वारा सबसे ज्यादा प्रयुक्त लेपनों में फॉस्फेट, क्रोमेट, ऑक्साइड, एनोडीकरण, सल्फीडाइजिंग तथा मेटलाइजिंग शामिल हैं । इनका प्रयोग स्नेहन तथा अपघर्षण प्रतिरोध हेतु एवं संक्षारण बचाव हेतु व्यापक रूप से होता है । लौह धातुओं एवं अल्युमिनियम तथा इनके मिश्र धातुओं का उपयोग वाणिज्यिक रूप से

उनकी सतहों के रासायनिक रुपांतरण द्वारा ऑक्साइड लेपनों में परिवर्तित कर किया जाता है । इस्पात तथा स्टेनलेस इस्पात के कृष्णकरण हेतु सबसे सामान्य प्रयुक्त पद्धति ऑक्सीकरण युक्त तप्त उच्चक्षारीय घोल में धातु का निमज्जन, तत्पश्चात 300-600^0 सें. ताप पर भाप के वातावरण में उपचार करना है, जिससे पृष्ठ सतह कृष्ण लौह ऑक्साइड (Fe_3O_4) में परिवर्तित हो जाती है ।

एनोडीकरण :

ऐनोडीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें कुछ विशिष्ट धातुओं पर क्रिया ऐनोड पर होती है । एनोडीकरण प्रक्रिया में, एल्युमिनियम जैसे पदार्थों की सतह को विद्युत-अपघटन द्वारा ऑक्साइड में परिवर्तित किया जाता है । एनोड विद्युत अपघटन के ऋणायनों से अभिक्रिया करता है और ऑक्सीकृत हो जाता है, अर्थात यह सतह लेपन का निर्माण करता है । गैसीय एनोडीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें परंपरागत आर्द्र प्रक्रिया के द्रव विद्युत अपघटन को अभिकारक गैस के निम्न आंशिक दाब पर दीप्त विसर्जन द्वारा प्रतिस्थापित किया जाता है । इस प्रक्रिया द्वारा ऑक्साइड, कार्बाइड एवं नाइट्राइड तैयार किये जा सकते हैं ।

अंतर्धात्विक लेपन :

ग्रेडित अंतर्पृष्ठ युक्त अंतर्धात्विक यौगिक लेपनों को अलौह धातु अथवा मिश्रधातु द्वारा लेपित कर प्रथम निक्षेपण तैयार किये जाते हैं तत्पश्चात लेपित सबस्ट्रेट को विसरण उपचार देते हैं । महत्वपूर्ण रुप से विक्षर्ण तथा अपघर्षण प्रतिरोध में सुधार के लिए इस तकनीक द्वारा इंजीनियरी घटकों को लेपित किया जाता है ।

तप्त निमज्जन :

इस प्रक्रिया में कार्यखंड को धात्विक लेपनों के निक्षेपण हेतु धातुओं के द्रव कुंड में डुबोया जाता है । निमज्जन प्रक्रिया सतत स्वचालित विनिर्माण प्रचालन हेतु वांछनीय है तथा यह प्रक्रिया जटिल आकारों के अगम्य भागों को भी समाहित करती है । जिंक, टिन तथा उनके यौगिकों के रक्षी लेपन सामान्यतः लौह एवं इस्पात घटकों पर इस तकनीक द्वारा तैयार किये जाते हैं । जहां कहीं स्टील को वातावरण, मृदा अथवा जल संक्षारण हेतु अनावरित किया जाता है, वहां तप्त निमज्जन गैल्वनीकृत जिंक लेपन प्रभावी तथा सस्ते बचाव के रुप में प्रयोग किये जाते हैं ।

सॉल जैल पद्धति :

निमज्जन, चक्रण अथवा वैद्युत कण संचलन जैसी उपयुक्त पद्धति द्वारा कोलाइडी निलंबन (सॉल) का लेपन किया जाता है, फिर ठोस जैल के रुप में इन्हें शुष्क किया जाता है । अंततः लगभग 15 मिनट तक उच्च तापक्रम पर इन्हें ज्वलित किया जाता है । हाइड्रोजन ऑक्साइडों अथवा हाइड्रॉक्साइडों के कोलाइडी विसरण का प्रयोग ऑक्साइड सिरामिक लेपन के पूर्वगामी के रुप में किया जाता है ।

रंगाई (पेंटिंग) :

पेंटिंग अलंकारी, रक्षी अथवा प्रकार्यात्मक उद्देश्यों से पदार्थ के पृष्ठ पर कार्बनिक लेपन के अनुप्रयोग हेतु सामान्य पद है । पेंटिंग से निम्नलिखित लाभ हैं -

- उपस्कर सामान्यतः कम कीमती तथा प्रचालन में आसान होते हैं ।
- इसमें पदार्थ तथा श्रम लागत कम होती हैं ।
- कार्बनिक लेपन व्यापक रुप के वर्णकों में उपलब्ध होते हैं तथा विभिन्न प्रकार के रंग, चमक अथवा सतह गठन का कार्य भी कर सकते हैं ।
- पेंट कई संक्षारक स्थितियों को भी रोक सकते हैं ।

अधिकांश पेंट अथवा कार्बनिक लेपन फिल्म फॉर्मर अथवा बाइंडर पर आधारित हैं, जो कि विलायक अथवा जल में घोल द्वारा तैयार किया जाता है । इस फिल्म का निर्माण करने वाले द्रव माध्यम में ऐसे वर्णकों को मिलाया जाता है जिससे वे शुष्क फिल्मों में रंग, अपारदर्शिता तथा अन्य गुणों को प्रदान करते हैं । इनमें कई अन्य प्रकार के कारकों को भी मिलाया जाता है जिससे कि हमें लेपनों में विशिष्ट गुण मिल सकें । इनमें शीघ्र सुखाने हेतु शुष्किन्न, लचीलेपन के लिए प्लास्टिसाइजर, ऊष्मा अथवा सूर्यप्रकाश के हानिकारक प्रभावों को कम करने के लिए स्थायक (stabilizers) इत्यादि शामिल हैं । व्यापक रुप से

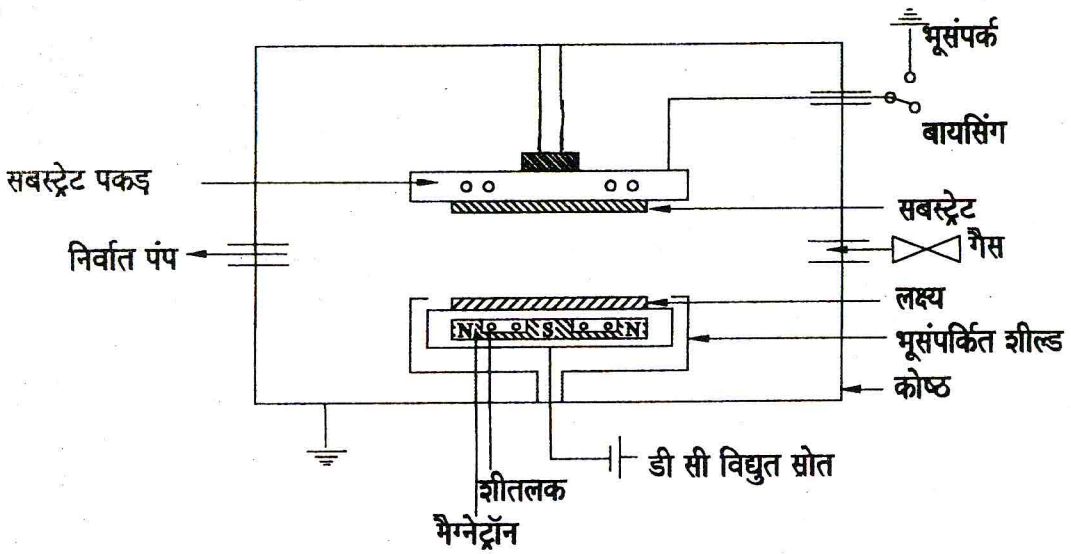

चित्र - 7 : मैग्नेट्रॉन दीप्त विसर्जन कण क्षेपण प्रणाली

फिल्म निर्माण करने वाले अनेकों पदार्थ उपलब्ध हैं जिनमें तेल, वार्निश, संश्लेषित रेजिन तथा पॉलिमर जैसे कि सेल्यूलोज, विनाइल, एपॉक्सी तथा पालिएस्टर शामिल हैं।

चयन मानदंड

किसी विशेष निक्षेपण प्रक्रिया का चयन कई कारकों पर निर्भर करता है। ये हैं -

- निक्षेपित किया जाने वाला पदार्थ
- निक्षेपण दर
- लेपनों की प्रकार्यात्मक आवश्यकताएं
- सबस्ट्रेट की सीमाएं अर्थात् अधिकतम निक्षेपण तापक्रम
- निक्षेप का सबस्ट्रेट पर आसंजन
- लक्ष्य पदार्थ की परिशुद्धता
- अपेक्षित उपसाधन तथा उपलब्धता
- लागत
- पारिस्थितिक दृष्टिकोण
- निक्षेपित पदार्थ का बाहुल्य इत्यादि

तालिका-1 में इनमें से कुछ प्रक्रियाओं हेतु कई मानदंडों को दर्शाया गया है। यह सही है कि कुछ ही तकनीकें ऐसी हैं जो सभी प्रकार के पदार्थों को निक्षेपित कर सकती हैं।

अनुप्रयोग

लेपन प्रौद्योगिकी के अनुप्रयोगों को निम्नलिखित सामान्य क्षेत्रों में वर्गीकृत किया जा सकता है-

प्रकाशीय - लेसर प्रकाशीय (परावर्तन एवं प्रेषण), वास्तु कला चमक, गृह प्रतिबिंब, वाहनों में पश्चदृष्य प्रतिबिंब, परावर्तित तथा अपरावर्तित लेपन, प्रकाश अवशोषी लेपन, चुनिंदा सौर अवशोषक इत्यादि पर लेपन।

वैद्युत - वैद्युत संवाहक, वैद्युत संपर्क, सक्रिय ठोस अवस्था निकाय, वैद्युत कुचालक, सौर सेल पर लेपन।

यांत्रिकी - स्नेहक परतें, अपघर्षण तथा अपरदन प्रतिरोधक लेपन, विसरण अवरोधक, कटान औजारों हेतु कठोर लेपन।

रासायनिक - संक्षारण प्रतिरोधक लेपन, उत्प्रेरक लेपन, इंजन ब्लेड एवं वेन्स, बैटरी स्ट्रिप्स, समुद्री उपयोग के उपस्कारों पर लेपन।

अलंकारी - घड़ी के फ्रेम, चेन, चश्में के फ्रेम, सजावटी गहनों पर अलंकारी लेपन।

लेपनों के कुछ उदाहरण विस्तारपूर्वक दृष्टांतो के रुप में दिये जा रहे हैं -

अलंकारी / प्रकार्यात्मक

वाहन उद्योग में माइलेज़ की वृद्धि के लिए वजन को कम करना एक उच्च प्राथमिकता है । अत:भारी धात्विक घटकों जैसे ग्रिल को हल्के भार के प्लास्टिक द्वारा प्रतिस्थापित किया जाता है । इसे कण-क्षेपण द्वारा क्रोमियम से लेपित किया जाता है ।

दूसरा व्यापक अनुप्रयोग एल्युमिनियम लेपित बहुलक परते हैं जिससे ऊष्मा रोधी, अलंकारी तथा पैकेजिंग अनुप्रयोग के कार्य किये जाते हैं ।

घड़ी के फ्रेम, घड़ी-चेनों तथा सजावटी गहनों इत्यादि पर टाइटेनियम नाइट्राइड के घर्षण प्रतिरोधी सुनहरी परतों का प्रयोग तीव्र रूप से बढ़ता हुआ अनुप्रयोग है ।

उच्च तापक्रम संक्षारण

गैस टरबाइन में प्रयुक्त ब्लेड तथा वेन्स ऑक्सीजन, सल्फर तथा क्लोरीन युक्त गैसों के अति संक्षारक पर्यावरण में उच्च प्रतिबल के अधीन होते हैं । उच्च तापक्रम मिश्रधातु जैसे एकल अथवा एकीकृत पदार्थ दोनों कार्यों को संपादित करने में असमर्थ होते हैं । इसका समाधान यांत्रिक गुणों से संपन्न एक स्थूल (Bulk) मिश्रधातु का अभिकल्पन तथा संक्षारण प्रतिरोध के लिए किसी M-Cr Al-Y (जहां M-Ni, Co, Fe या Ni+Co को इंगित करता है ।) मिश्रधातु के बाहरी लेपन द्वारा किया जाता है । उक्त लेपन इलेक्ट्रॉन पुंज वाष्पन द्वारा उत्पादन में तथा कण-क्षेपण अथवा प्लाज्मा स्प्रेइंग द्वारा प्रयोगशाला में निक्षेपण किया जाता है ।

वातावरण संक्षारण

वैद्युत आयन लेपन द्वारा एल्युमिनियम के मोटे लेपनों का प्रयोग गैल्वनिक संक्षारण के लिए वायुयान तथा अंतरिक्ष यान के विभिन्न अनियमित आकार के घटकों तथा बंधकों (Fasteners) पर किया जाता है । यह गैल्वनिक संक्षारण, टाइटेनिम अथवा इस्पात के घटक, एल्युमिनियम से संपर्क में आने पर करते हैं । ये अच्छा टांका लगाने की क्षमता भी प्रदान करते हैं ।

घर्षण एवं अपघर्षण

स्वर्ण, मोलीसल्फाइड (MoS_2), मोली सीलिसाइड ($MoSi_2$) तथा अन्य स्तरित पदार्थों के शुष्क परत स्नेहन लेपन अपघर्षण को कम करने हेतु कण-क्षेपण अथवा वैद्युत आयन लेपन द्वारा बियरिंग एवं अन्य स्लाइडिंग भागों पर निक्षेपित किया जाता है । चूंकि परंपरागत कार्बनिक तरल स्नेहक लंबे समय के प्रयोग में अपरिवर्तनीय निम्नीकरण तथा विरूपण (Creep) के प्रति सुग्राही हैं इसलिए इन शुष्क स्नेहक लेपनों का प्रायोगिक महत्व बहुत बढ़ जाता है । इसके अलावा कार्बनिक शीतलक पर्यावरण के लिए खतरा हैं जिनका समुचित निपटान (disposal) कठिन है ।

कटिंग औजार

कटिंग औजार उच्च गति स्टील अथवा सीमेंटित कार्बाइडों से बने होते हैं । वे अपघर्षण एवं आसंजक घर्षण द्वारा धीरे-धीरे निम्नीकृत होते रहते हैं । अपघर्षण, उच्च तापक्रमों तथा औजारों की नोकों पर उच्च बलों के कारण कार्यभाग से स्टील चिप तथा उच्च गति स्टील औजार से स्टील अथवा सीमेंटित कार्बाइड से कोबाल्ट बाइंडर के बीच सूक्ष्म वेल्डिंग को प्रोत्साहन मिलता है । परिवर्ती चिप सूक्ष्म वेल्ड को तोड़ता है जससे औजारों की सतह खुरदुरी एवं उनका अपघर्षण हो जाता है । टाइटेनियम कार्बाइड (TiC), टाइटेनियम नाइट्राइड (TiN), एल्युमिना (Al_2O_3) जैसे उच्च ताप सह यौगिकों की तनु परतें विसरण अवरोध द्वारा इस सूक्ष्म वेल्डिंग को रोकती हैं । इन लेपनों से औजार की आयु में कई गुना वृद्धि एवं कटिंग बलों में भी कमी पायी गयी है । पी वी डी अथवा सी वी डी द्वारा ऐसे लेपनों का निक्षेपण किया जाता है ।

नाभिकीय ईंधन

सीवीडी द्वारा गैस शीतित रिएक्टरों में प्रयुक्त नाभिकीय ईंधन कणों पर पायरोलिटिक कार्बन तरलित (Fluidised) रिएक्टरों में निक्षेपित किया जाता है । उक्त लेपन विखंडन उत्पादों को प्रति धारित रखते हैं तथा संक्षारण से ईंधन का बचाव करते हैं ।

जैवचिकित्सा उपयोग

हृदयवाल्व जैसे रोपण घटकों को सीवीडी तकनीकों द्वारा पायरोलिटिक कार्बन से निर्मित करते हैं । जैवकीय सुसंगता प्राप्त करने के लिए धातु घटकों (भागों) को आयन प्लेटिंग द्वारा कार्बन से लेपित किया जाता है ।

(मैं, श्री प्रवीण कुमार चोपड़ा, उपनिदेशक (राजभाषा) और उनके सहयोगियों के प्रति आभार व्यक्त करता हूं, जिन्होंने हिंदी में इस लेख को तैयार करने में सहयोग दिया ।)

सूचना तकनीकी : भारतीय परिदृश्य

आशा त्रिपाठी
वरिष्ठ कंप्यूटर वैज्ञानिक,
P-245, रक्षा प्रयोगशाला (डी.आर.डी.ओ.),
रटन्डा पैलेस, जोधपुर - 342 011

जब माइकल फैराडे ने अपने विद्युत चुंबकीय आविष्कार का प्रदर्शन ब्रिटिश रॉयल सोसायटी के समक्ष किया तब ब्रिटिश प्रधान मंत्री ग्लैडस्टोन ने प्रश्न किया, "क्या यह तकनीक अच्छी है ?" उत्तर था, "क्या एक नवजात शिशु अच्छा होता है ?" नवजात शिशु का अच्छा होना या न होना इस पर निर्भर करता है कि शिशु किस प्रकार विकसित होता है । इसी तरह यह इस बात पर निर्भर करता है कि हम तकनीक का प्रयोग किस प्रकार करते हैं । जब ग्लैडस्टोन ने जोर देकर पूछा, "इस तकनीक का क्या उपयोग होगा ?" तो फैराडे ने कहा, "मैं यह नहीं जानता कि इस तकनीक का वास्तविक उपयोग क्या होगा किंतु एक दिन आप संसद-सदस्य के रूप में इस तकनीक पर टैक्स लगाने की मांग करने योग्य होंगे ।"

आज हम एक ऐसी प्रतियोगिता के युग में जी रहे हैं जो बहुत तीव्रता से विश्वव्यापी रूप ले रही है । वैसे तो भविष्य के विषय में अनुमान लगाना सदैव ही कठिन होता है, किंतु सूचना तकनीकी के भविष्य के विषय में पूर्वानुमान लगाना विशेष रूप से कठिन एवं अनिश्चित सा है । साथ ही इस बात से इंकार नहीं कर सकते कि तकनीक का भविष्य, विशेष रूप से भारतीय परिदृश्य में, हमारे ही हाथों में है । यही बात एक साथ कई अनुमानों को जन्म देती है । डॉ. अब्दुल कलाम के अनुसार 2020 तक भारतवर्ष एक पूर्ण विकसित देश बन जायेगा । यदि ऐसा संभव है तो सूचना तकनीक एक सशक्त माध्यम बनेगी । यह तकनीक, इस शताब्दी की एक निर्णयात्मक तकनीक होगी । भारतवर्ष के संदर्भ में एक बात तो निश्चित है कि उसके पास सॉफ्टवेयर कौशल बहुत ही उच्चकोटि का है, जो कि इस कार्य में उसकी सहायता करेगा । कारनैज मैलन्स मैच्योरिटी इन्डैक्स (एस ई आई) ने यह बात प्रमाणित की है कि भारत एक ऐसा देश है जिसमें सॉफ्टवेयर पेशेवरों की संख्या ही अधिक नहीं, अपितु उनकी गुणवत्ता, क्षमता और ज्ञान भी उच्चस्तरीय है । सरकार ने भी सूचना तकनीक के महत्व को स्वीकार किया है । प्रधानमंत्री ने एक बार कहा भी है, "सूचना तकनीक ही भारत का भविष्य है ।" 1998 में गठित राष्ट्रीय कार्य दल ने तीन रिपोर्टों के माध्यम से एक रोड मैप तैयार किया है और यह पता लगाया हैं कि सॉफ्टवेयर /हार्डवेयर एवं सूचना तकनीकी के लिए एकीकृत नीति कैसे तैयार हो ।

सूचना तकनीक मात्र कंप्यूटर और सूचना का संश्लेषण ही नहीं है, यह सॉफ्टवेयर और हार्डवेयर का दिशा निर्देशन भी करता है । ऐसा माना जाता है कि भारत ने सॉफ्टवेयर में अच्छी उन्नति की है, किंतु हार्डवेयर के क्षेत्र में उसके प्रयास विफल रहे हैं । भारत में सूचना प्रौद्योगिकी हार्डवेयर और सॉफ्टवेयर के समुचित विकास के लिए मूलभूत सुविधाओं का होना अत्यावश्यक है । इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि सॉफ्टवेयर में सफलता के साथ-साथ हमें उन देशों जैसे ताइवान, दक्षिण कोरिया, मलेशिया और जापान, जो हार्डवेयर के क्षेत्र में सफलता प्राप्त कर चुके हैं, उनकी सफलता से सीखना चाहिए । हम एक अच्छी शुरुआत तो कर ही रहे हैं । भारत सरकार ने वर्ष 2001 को "ई-गवर्नेन्स" वर्ष घोषित किया था । हमें अब एक प्रकार से सूचना तकनीक को एक

नागरिक सहयोगी तकनीक बनाना है जिससे आम आदमी लाभांवित हो सके। ई-गवर्नेन्स का अर्थ है सभी सरकारी कार्यों में सूचना तकनीकी का प्रयोग करना। दूसरे शब्दों में, इस बात को सुनिश्चित करना कि सार्वजनिक उपयोग के लिए सूचना प्रौद्योगिकी जन-जन के लिए उपलब्ध हो। सभी राज्य इस दौड़ में शामिल हैं, आंध्रप्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु, गुजरात, महाराष्ट्र, केरल इत्यादि इस, क्षेत्र में अग्रणी हैं। इसी क्रम में, मध्यप्रदेश के धार जिले के ग्राम पंचायतों द्वारा संचालित "ज्ञानदूत" कार्यक्रम, जो कि कम खर्च पर, जनसमुदाय द्वारा संचालित एक ग्रामीण इन्ट्रानैट मॉडल है, काफी सफल रहा है।

हमारे देश में जहां अधिसंख्य जनसंख्या गरीबी रेखा से नीचे जीने को विवश है, वहां सेवाएं अर्जित करने की अपेक्षा उन सेवाओं तक पहुंच बनाकर उनके सदुपयोग की क्षमता बढ़ाना अधिक महत्वपूर्ण है। टेलीफोन की भाँति, कंप्यूटर की सेवाओं से व्यक्ति लाभान्वित होता रहे, ऐसी व्यवस्था का निर्माण होना चाहिए। जिस प्रकार एस.टी.डी. केंद्र एक तार द्वारा देश ही नहीं अपितु विदेश को भी एक साथ जोड़ सकता है। मध्यप्रदेश के जिले धार में चलाया गया "ज्ञानदूत" कार्यक्रम इसी सिद्धांत को प्रतिपादित करने वाला एक कार्यक्रम है। इस व्यवस्था में ग्रामीण केंद्रों को "इन्ट्रानेट" के माध्यम से उनमें स्थित कंप्यूटरों को जोड़ा गया है। इनमें स्थानीय युवक एक व्यवसायी की भांति कार्य करते हैं। साइबर-कैफे-कम-साइबर-ऑफिस चलाने के लिए औद्योगिक लाइन पर अवैज्ञानिक अथवा मानदेय के आधार पर स्थानीय युवकों को प्रशिक्षित कर ग्राम पंचायत स्तर पर कंप्यूटरों को नैटवर्क में स्थापित कर काम लिया जाता है। यह स्थानीय सूचनालय ग्रामवासियों को "यूजर चेन्ज बेस्ड" सेवाएं प्रदान करता है। सूचनालय को चलाने वाला व्यक्ति स्थानीय हाईस्कूल उत्तीर्ण व्यक्ति होता है, जिसे "सूचक" नाम से संबोधित करते हैं। उसे मात्र कंप्यूटर का रखरखाव एवं डाटा एन्ट्री का प्रशिक्षण प्राप्त होता है। सूचक को बहुत कम टाइप करने की आवश्यकता होती है क्योंकि ज्ञानदूत का सॉफ्टवेयर "मैनू ड्रिविन" होता है। ज्ञानदूत नैटवर्क को कुल 25 लाख रुपये की कीमत में स्थापित किया गया है। इसकी सेवाएं विशाल श्रंखला से जुड़ी रहती हैं, अतः सूचना संबंधी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति इससे हो जाती है। ज्ञानदूत समिति एक रजिस्टर्ड संस्था है। यह सॉफ्टवेयर भी हिंदी में है। इस प्रकार ज्ञानदूत, स्थानीय सहभागिता का उपयोग कर आनेवाली वित्तीय समस्याएं एवं भाषा संबंधी समस्याओं के निराकरण द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में विशिष्ट क्रांति लाया है।

साउथ कोरिया में किसानों को इन्टरनैट सुविधाएं उपलब्ध हैं। भारत सरकार एवं अनेकों राज्य सरकारें अपने-अपने क्षेत्रों में "ई-गवर्नेन्स" का प्रचार-प्रसार कराने के लिए पहल कर रही हैं। इस संबंध में "ई-गवर्नेन्स" सूचना प्रौद्योगिकी "एनेबिल्ड" गवर्नेन्स है।

अब हम हार्डवेयर पर ध्यान दे सकते हैं जो सदैव परेशानी का विषय रहा है। माओ-त्से-तुंग ने चीन में एक भिन्न विषय पर बोलते हुए कहा था कि चीन को औद्योगिक एवं कृषि क्षेत्र में उन्नति करनी चाहिए अर्थात् चीन को दोनों पैरों पर चलना चाहिए। जहां तक सूचना तकनीकी का प्रश्न है, भारत सॉफ्टवेयर रूपी एक पैर से लंगड़ा है। हम इस प्रकार की स्थिति से कैसे निकल सकते हैं। कुछ समय पूर्व एक परिकल्पना की गयी थी कि संभवतः हम "मुरे" के नियम की भौतिक सीमाओं तक पहुंच रहे हैं। सब कुछ देखते हुए, हमारे देश में आगामी 10-15 वर्षों में सूचना तकनीकी के भविष्य के विषय में एक गंभीर चिंतन की अतीव आवश्यकता है। तकनीकी क्षेत्र में चुनौती सदैव मात्र नवीनतम ज्ञान की ही नहीं होती अपितु तकनीकी को वाणिज्य बनाने की भी होती है। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि पेशेवर संस्थाओं एवं उत्तम केंद्रों को "इमर्जिंग टैक्नोलॉजी" पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए।

भारत में सूचना तकनीकी उद्योग :

भारत के पास एक नवीन मंत्र है "सूचना तकनीकी"। भारतीय व्यवसाइयों, नागरिकों, अर्थशास्त्रियों, राजनीतिज्ञों आदि का ध्यान इस तकनीक की रोजगार उपलब्ध कराने की क्षमताओं की ओर आकर्षित हुआ है। इसलिए सूचना तकनीकी उद्योग भारतीय राष्ट्रीय

विषय सूची में सर्वोच्च प्राथमिकता वाले स्थान पर है। भारत की अर्थव्यवस्था का आधुनिकीकरण एवं एक आदर्श अर्थव्यवस्था बनाने के लिए एक उपकरण के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। गत दो वर्षों में इन्टरनैट, ई-कॉमर्स और साथ ही भारत सरकार की आवश्यकता एवं इच्छाशक्ति की ही शक्ति है जो सूचना तकनीकी को भारत के आम नागरिक के दैनिक जीवन का अंग बना रही है।

भारत में सॉफ्टवेयर उद्योग का स्थान :

भारत शांतिपूर्वक किंतु तीव्र गति से सॉफ्टवेयर उद्योग में और वेब आधारित सेवाओं के क्षेत्र में नेतृत्व के रूप में उभर रहा है। भारत का अपना प्रतियोगात्मक लाभ सॉफ्टवेयर व्यवसाय में भली प्रकार जाना जाता है, मूल्य आधारित मान, अंतर्राष्ट्रीय गुणवत्ता, उच्च विश्वसनीयता, शीघ्र उपलब्धता, भारतवर्ष की विशेष योग्यता स्थापित करते हैं। यह एक ऐसा देश है जहां अधिक से अधिक बहुराष्ट्रीय कंपनियां अपने सॉफ्टवेयर उत्पादों के निर्माण की आवश्यकताओं की पूर्ति सरलता से कर लेती हैं।

सूचना तकनीक कार्य दल :

कंप्यूटर और दूरसंचार के क्षेत्र में एक अपूर्व प्रगति ने संभवत: मानव इतिहास में एक महानतम वैज्ञानिक क्रांति को जन्म दिया है। अपने बृहद् ज्ञान आधारित उपलब्धि से भारत सूचना तकनीकी के विश्व क्षितिज पर पूर्व से ही एक विशिष्ट शक्ति संपन्न कार्य दल, जिसमें 16 सदस्यीय उच्चस्तरीय समिति है और पांच नामित सदस्य हैं, का राष्ट्रीय सूचना नीति निर्माण हेतु गठन किया गया है। इसमें प्रसिद्ध सूचना तकनीकी व्यवसायिक विशेषज्ञ, शिक्षाशास्त्री, अप्रवासी भारतीय तथा विदेशी नागरिक हैं जो इस कार्यदल के मार्गदर्शक हैं।

इस कार्यदल ने अपनी प्रथम रिपोर्ट प्रस्तुत की थी जिसे "सूचना तकनीकी कार्य योजना" का नाम दिया गया। इस रिपोर्ट में एक प्रावधान है-"सूचना तकनीकी सभी के लिए, 2008 तक"। इसमें "ऑपरेशन नॉलेज (कार्यान्वय ज्ञान)" नाम से राष्ट्रीय आंदोलन का भी विशेष प्रावधान है। यह सूचना तकनीकी का वैश्वीकरण एवं सूचना तकनीकी आधारित शिक्षा पर ध्यान केंद्रित करेगा। सूचना तकनीकी कार्य योजना के कुछ पहलु इस प्रकार हैं :-

1) देश में एस.टी.डी./आई.एस.डी. बूथों का "कियोस्क" में परिवर्तन जो कि इन्टरनैट एवं इससे संबंधित सेवाएं प्रदान करें, जैसे-ई-मेल।
2) पांच वर्षों के लिए सॉफ्टवेयर और सूचना तकनीकी को बैंकों में प्राथमिकता के आधार पर चालू किया जाये।
3) भारतीय सूचना तकनीकी कंपनियों के लिए "ब्लैन्केट असीमित अनुमति" विदेश से निर्यात लाभ हेतु कार्य करना।
4) केबल टीवी के माध्यम से इंटरनैट उपलब्धता। सरकारी / पब्लिक सैक्टर में रोजगार हेतु सूचना तकनीकी का आवश्यक ज्ञान होना।

सांख्य वाहिनी : एक राष्ट्रीय लक्ष्य :

भारत सरकार ने बृहद् आकार प्रदान करने के लिए राष्ट्रीय सूचना के बुनियादी ढाँचे को आमूल परिवर्तित करने का निश्चय किया है। अत: अब सांख्य वाहिनी परियोजना उच्चीकृत करने का कार्य कर रही है। सांख्य वाहिनी का उद्देश्य है एक अति उच्च क्षमता युक्त राष्ट्रीय नेटवर्क स्थापित करना और इसे शैक्षिक, स्वास्थ रक्षा आदि अनेक ज्ञानवर्धन संबंधित अनुप्रयोगों से युक्त कर देश के लिए तकनीकी एवं आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त करना। सांख्य वाहिनी प्राथमिक रूप से एक डाटा नेटवर्क होगा जो राष्ट्र की रीढ़ सदृश होगा। प्रारंभ में कम से कम दस मैट्रोपोलिटन केंद्रों को, सौ से अधिक विश्वविद्यालयों को, उच्च शिक्षण संस्थानों को एवं अनुसंधान केंद्रों को जोड़ेगा। इसमें नेटवर्क की गति देश में उपलब्ध नैटवर्क की गति से 1000 से 10,000 गुना अधिक होगी। यह मात्र शिक्षण संस्थाओं, अनुसंधान केंद्रों एवं प्रशिक्षण केंद्रों की ही आवश्यकताओं की

पूर्ति नहीं करेगा अपितु वाणिज्यिक, निर्माण एवं वित्तीय इकाइयों की उच्च डाटा संचार आवश्यकताओं की भी पूर्ति करेगा । यह नैटवर्क अनेक चरणों में स्थापित किया जायेगा जिनमें से दो चरणों में निम्न मुद्दे सम्मिलित होंगे -

1) एक नेशनल इन्टरनैट बैकबोन (एन.आई.बी.) की स्थापना ।
2) राष्ट्रीय बैकबोन से संबंधित शहरी डाटा नेटवर्क्स की एक श्रंखला का निर्माण ।

यह राष्ट्रीय बैकबोन मुख्य शहरी केंद्रों और कस्बों में पहुंचेगा और विद्यालयों, विश्वविद्यालयों को उपलब्ध होगा तथा वाणिज्यिक संस्थाओं जैसे वित्तीय संस्थानों, औद्योगिक इकाइयों और सॉफ्टवेयर कंपनियों को भी उपलब्ध होगा । तब यह संभव हो सकेगा कि शैक्षिक एवं प्रशिक्षण एवं अंकीय पुस्तकालयों को चलित किया जा सके । जो कुछ विषय अन्य अमरीकी विश्वविद्यालयों में उपलब्ध हैं, कुछ भारतीय उच्च शैक्षिक एवं अनुसंधान कम लागत वाले नैटवर्क को उपलब्ध कराके अनुप्रयोगों के विकास को गति प्रदान करेगी । इससे दूर शिक्षा, रोजगारोन्मुख शिक्षा, प्रशिक्षण, विद्यार्थी प्रशिक्षण तथा अनेकानेक आदर्श अनुप्रयोगों का विकास होगा ।

भारत में सॉफ्टवेयर टैक्नोलॉजी पार्क :

ये पार्क डाटा-संचार माध्यमों का प्रयोग करके कंप्यूटर सॉफ्टवेयर के विकास के लिए एक शतप्रतिशत निर्यात संबंधी योजना का ही भाग है । इस योजना को प्रारंभ करने के लिए सरकार ने 1991 में एक स्वायत्तशासी संस्थान की स्थापना की जोकि प्रशासनिक रूप से इलेक्ट्रॉनिक विभाग के अंतर्गत आता था । इसका नाम एस.टी.पी.आई. (सॉफ्टवेयर टैक्नॉलॉजी पार्क्स ऑफ इंडिया) रखा गया । एस.टी.पी.आई. ने उद्योगों को सेवा प्रदान करने के लिए एस.टी.पी. कांपलैक्स पुणे, बंगलौर, भुवनेश्वर, हैदराबाद, अहमदाबाद, गांधीनगर, तिरुअनंतपुरम् एवं नॉएडा इत्यादि नगरों में स्थापित किये । एस.टी.पी.आई. ने सॉफ्टवेयर नियति हेतु "सॉफ्टनेट" (सॉफ्टवेयर एस.डी.सी.) सुविधाएं, सॉफ्टवेयर विकास संबंधी कार्यकलापों के लिए रीढ़ का निर्माण करता है । पूरे भारतवर्ष में 12 स्थानों से एस.टी.पी.आई. सॉफ्टवेयर टैक्नोलॉजी पार्क्स का प्रबंधन करता है । एस.टी.पी.आई. सॉफ्टवेयर विकास से संबंधित उच्च कोटि के ट्रेनिंग प्रोग्रामों का भी संचालन करता है, जैसे-ई.आर.पी./ एम.आर.पी, डाटा कम्युनिकेशन इत्यादि । एस.टी.पी.आई. विभिन्न राज्य सरकारों को, उनके स्थानों पर सॉफ्टवेयर टैक्नोलॉजी पार्क स्थापित करने के लिए सलाह मशविरा भी देती है ।

इलेक्ट्रॉनिकी हार्डवेयर टैक्नोलॉजी पार्क (ई.एच.टी.पी.) :

देश में एक मजबूत इलेक्ट्रॉनिक उद्योग के निर्माण के लिए भारत सरकार ने इलेक्ट्रॉनिकी हार्डवेयर टैन्क्नोलॉजी पार्क (ई.एच.टी.पी.) योजना की घोषणा की है । इसका उद्देश्य निर्यात संभावनाओं की वृद्धि एवं इलेक्ट्रॉनिक पुर्जों के उद्योग के विकास पर केंद्रित होगा ।

भारतीय सूचना तकनीकी प्रशिक्षण परिदृश्य :

भारतीय कंप्यूटर प्रशिक्षण एवं शिक्षा उद्योग 1970 के दशक में अस्तित्व में आया । कुछ एक प्राइवेट संस्थान अस्तित्व में आये । 1970 एवं 1980 के दशकों में प्रशिक्षण संस्थानों का ध्यान केवल निम्न बिंदु (लो-एण्ड) शिक्षा पर केंद्रित था । ये संस्थान कंप्यूटर संबंधित जागृति में सहायक सिद्ध हुए । इस शिक्षा के उच्च बिंदु तक प्रशिक्षण केवल इंजीनियरिंग कॉलेजों, कंप्यूटर साइंस कॉलेजों में था । एन.आई.आई.टी., एपटैक आदि राष्ट्रीय स्तर के संस्थान थे । यद्यपि प्राइवेट संस्थाओं द्वारा मैट्रोपॉलिटन नगरों में चलाए जा रहे कुछ विद्यालयों ने पहले ही कंप्यूटर प्रशिक्षण देना प्रारंभ कर दिया था । वर्तमान में भारतवर्ष में लगभग 1742 राष्ट्रीय संस्थान, इंजीनियरिंग कॉलेज, विश्वविद्यालय, डिप्लोमा कॉलेज हैं, जो कुल मिलाकर 60 हजार कंप्यूटर पेशेवर तैयार करते हैं, इनमें से 16,000 प्रमुख संस्थानों से आते हैं ।

इन्टरप्राइज रिसोर्स प्लानिंग (ई.आर.पी.) :

ई. आर.पी. सॉफ्टवेयर से संबंधित ऐसी योजना है, जो प्रमुख व्यवसायिक क्षेत्रों को पूर्ण रूपेण साधन

उपलब्ध कराता है जैसे वित्तीय, निर्माण, वितरण, विक्रय इत्यादि। ये सभी क्षेत्र परस्पर इतने अधिक संबद्ध हैं कि कोई भी व्यवसायिक गतिविधि जो एक स्थान पर रिकॉर्ड की जाती है, तुरंत ही सभी स्थानों पर प्रतिबिंबित हो जाती है।

सूचना तकनीकी परिषदें एवं सरकारी संगठन

कंप्यूटर परिषद : कंप्यूटर सोसायटी ऑफ इंडिया (सी. एस. आई.) :

सी. एस. आई. कंप्यूटर विशेषज्ञों की एक परिषद है जो सूचना तकनीकी के माध्यम से विकास कार्यों के लिए प्रतिबद्ध है। यह 1965 में हैदराबाद में सूचीबद्ध की गयी थी। इसका मुख्य कार्यालय मुंबई में है और इसका शिक्षा निदेशालय चैन्नई में है। इसके 59 प्रमुख केंद्र हैं तथा 68 विद्यार्थी शाखाएं हैं, जो संपूर्ण भारतवर्ष में फैली हुई हैं। इसके अपने प्रकाशन भी हैं। काफी उच्चकोटि के सेमिनार, संगोष्ठी, कार्यशाला, प्रशिक्षण कार्यक्रम, संभाषण, प्रदर्शनी, प्रतियोगिताओं इत्यादि गतिविधियों का यह सफलतापूर्वक संचालन कर रहा है।

नेशनल ऐसोसिएशन ऑफ सॉफ्टवेयर एंड सर्विसेज कंपनीज़ (नासाकॉम) :

नासाकॉम भारत में कंप्यूटर सॉफ्टवेयर और इससे संबंधित सेवाओं की एक सर्वोच्च संस्था है। यह मात्र वाणिज्यिक संस्थान नहीं अपितु भारत में सॉफ्टवेयर से संबंधित सभी सूचनाओं के लिए एक "एक बिंदु संदर्भ" है। इसकी स्थापना जुलाई 1988 में हुई। यह एक लाभ रहित संगठन है। इसकी सदस्यता मान्य प्राइवेट कंपनियों से लेकर पब्लिक सेक्टर कंपनियां तक ग्रहण कर सकती हैं। भारत में शायद ही ऐसी कोई कंपनी होगी जिसमें 20 से अधिक व्यवसायी हों और वह कंपनी नासाकॉम की सदस्य न हो।

मैन्यूफैक्चरर्स ऐसोसिएशन ऑफ इन्फॉर्मेशन टैक्नोलॉजी (एम. ए. आई. टी.) :

इस परिषद की स्थापना 1982 में हुई। यह परिषद भारतीय सूचना प्रौद्योगिकी के हार्डवेयर, प्रशिक्षण, सेवा आदि के क्षेत्र में एक प्रतिनिधि के रूप में उभरी है। आज एम. ए. आई. टी. के द्वारा अनेकानेक समितियों के माध्यम से अध्ययन, सर्वेक्षण, विकास आदि अनेक कार्य संपादित किये जाते हैं। साथ ही समय-समय पर संगोष्ठियों, प्रकाशनों एवं प्रदर्शनियों का आयोजन कर प्रचार प्रसार का कार्य संपन्न किया जाता है।

सॉफ्टवेयर प्रॉडक्ट इंडिया इनिसिएटिव (एस. पी. आई. एन.) :

इस समिति की स्थापना व्यवसाइयों एवं अन्य संगठनों द्वारा की गयी है। यह सॉफ्टवेयर उत्पादों का विकास करने वालों के हितों को संरक्षित करने के कार्य के साथ ही उत्पाद के विकास, ब्रांड तथा विक्रम से संबंधित सूचनाओं को उपलब्ध कराती है।

एजुकेशन एंड रिसर्च नेटवर्क (ई. आर. एन. ई. टी. अर्थात अरनेट) :

यह एक स्वायत्तशासी संगठन है जिसे "अरनेट" नाम से संबोधित किया जाता है। इस समय अरनेट लगभग 700 से अधिक संगठनों को परितंत्र उपलब्ध कराता है जो विश्वविद्यालयों, शिक्षण संस्थाओं (यथा आई. आई. टी.), शोध एवं विकास प्रयोगशालाओं एवं अन्य अनेक अशासकीय संगठनों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसे देश के सर्वाधिक प्रसिद्ध नेटवर्कों और इन्टरनेट सेवा प्रदाता होने का गौरव प्राप्त है। इसके लगभग 20,000 प्रयोक्ता हैं।

नेशनल इन्फॉर्मेटिक्स सेंटर (एन.आई.सी. अर्थात् निक) :

'निक' भारत में सूचना तकनीकी क्षेत्र में एक प्रमुख संगठन है। इसने एक उपग्रह आधारित देशव्यापी कंप्यूटर संचार नेटवर्क स्थापित किया है - जिसे निकनेट नाम से संबोधित किया जाता है। यह 650 नोड्स को परस्पर जोड़ता है जिनमें सभी राज्यों के जनपदों, केंद्र शासित प्रदेशों, राजधानियों एवं राष्ट्रीय राजधानी को संबद्ध किया गया है। इसके द्वारा जिला इकाइयों से केंद्र तक सूचनाओं का आदान प्रदान होता है।

डिपार्टमेंट ऑफ इलेक्ट्रॉनिक्स एक्रीडिएशन ऑफ कंप्यूटर कोर्सेज स्कीम :

इस परिषद का कार्य उच्च गुणवत्ता युक्त पेशेवर तैयार करना है । कंप्यूटर सॉफ्टवेयर के क्षेत्र में प्राइवेट संस्थानों में उपलब्ध सुविधाओं और विशेषज्ञों का उपयोग करने कंप्यूटर सॉफ्टवेयर के क्षेत्र में सुधार से संबंधित मार्गदर्शक बिंदु निर्धारित करना इसका कार्य है । इस योजना के अंतर्गत वर्तमान में 650 से अधिक संस्थान आते हैं ।

आज भारत में अमरीका के बाद विश्व की सबसे बड़ी अंग्रेजी भाषी वैज्ञानिक कार्यकर्ताओं की संख्या है । 1832 से अधिक शैक्षिक संस्थान एवं विद्यालय हैं जो प्रतिवर्ष 67785 कंप्यूटर सॉफ्टवेयर प्रोफेशनल्स को प्रशिक्षित करते हैं । हमें यह सुनिश्चित करना है कि सूचना तकनीकी का प्रयोग हमारे देशवासियों के जीवन की गुणवत्ता में सुधार लाये । यह कहा जाता है कि भारत एक सर्प के समान है जिसका सिर इक्कीसवीं शताब्दी में है पूंछ सत्रहवीं शताब्दी में । वास्तव में, हम एक बहुआयामी भारत में निवास कर रहे हैं ।

सूचना तकनीकी हमारे देश के विकास में एक विशिष्ट सेवा प्रदान कर सकती है । शिक्षा के प्रचार-प्रसार में भी यह एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है । सूचना तकनीकी के माध्यम से रोजगार भी उत्पन्न किया जा सकता है । आई सी (इन्टीग्रेटेड सर्किट) इलेक्ट्रॉनिक उद्योग का हृदय है । यदि हम यह सुनिश्चित करना चाहें कि हमारे देश के लोग इस सूचना तकनीकी से अधिकतम लाभ प्राप्त कर सकें तो आई.सी. ("इमेजीनेशन एंड कमिटमेंट") अर्थात सूचना तकनीकी के माध्यम से "कल्पना एवं प्रतिबद्धता" को अपनाना होगा । हममें से प्रत्येक को यह कहना होगा- "आई सी इन्टीग्रेटेड सर्किट ऑफ इमेजीनेशन एंड कमिटमेंट" अर्थात आई सी, आई सी, आई सी !!!

❑❑❑

पीने के पानी से आर्सेनिक हटाने की तकनीक

महेंद्र पांडेय
केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड,
परिवेश भवन, पूर्वी अर्जुन नगर,
दिल्ली - 110 032

आर्सेनिक एक ऐसा विषैला रासायनिक है जो जल थल में पर्याप्त रूप से व्याप्त है। विश्व के कुछ स्थानों में तो यह विषाक्त पदार्थ भरपूर रूप से पाया जाता है। चूंकि जल जीवन का अत्यंत आवश्यक घटक है, इस कारण इसमें मौजूद आर्सेनिक वहां के जनमानस के स्वास्थ पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। इस लेख में आर्सेनिक के विभिन्न प्रभाव एवं उससे बचने के उपायों पर कुछ प्रकाश डाला गया है।

आर्सेनिक, एक विषैला रासायनिक तत्त्व है, जो ऑक्सीजन, क्लोरीन, गंधक, कार्बन, हाइड्रोजन, सीसा, स्वर्ण और लौह के यौगिकों के रूप में चट्टानों का निर्माण करने वाले खनिजों में मिलता है। भौगोलिक प्रक्रियाओं के अतिरिक्त यह औद्योगिक उत्पादन, धातु प्रगलन (स्मेल्टिंग) और कृषि कार्यों के कारण भी उत्पन्न होता है। आर्सेनिक विषाक्तता की समस्या एशिया के कई देशों के साथ ही विश्व के दूसरे क्षेत्रों में भी है। वर्तमान में बांगलादेश की 60 प्रतिशत आबादी आर्सेनिक की समस्या से ग्रस्त है। लाखों व्यक्ति थाइलैण्ड, ताईवान, अर्जेंटाइना, चाईल, मैक्सिको, मंगोलिया और भारत के पश्चिम बंगाल राज्य इस समस्या की चपेट में है। कनाडा के नोवा स्कोटिया क्षेत्र की चट्टानों में आर्सेनिक के यौगिक की बहुलता है जो भूजल में भी मिलते हैं। अमरीका के न्यू मैक्सिको और एरिजोना क्षेत्र में स्थानीय निवासियों को पानी टैंकर के माध्यम से दूर से मंगवाना पड़ता है क्योंकि वहां स्थानीय पानी में आर्सेनिक उपलब्ध है।

कोई भी व्यक्ति आर्सेनिक के संपर्क में कई तरीकों से आ सकता है। यह प्राकृतिक पर्यावरण में मौजूद है इसलिए अल्प मात्रा में आर्सेनिक के प्रभाव में सभी आते है। जहां इसकी मात्रा अधिक होती है, वहां मानव शरीर में इसका प्रमुख स्रोत भूजल है। भूजल को प्रायः उपचारित किये बिना पीने और खाना पकाने के लिए सीधे उपयोग में लाया है। आर्सेनिक का वायु में वाष्पीकरण नहीं होता और न ही त्वचा द्वारा इसका अवशोषण होता है। आर्सेनिक का दूसरा प्रमुख स्रोत खाद्य पदार्थ हैं। अधिकतर खाद्य पदार्थों, सब्जियों, मछलियों और समुद्री आहारों में आर्सेनिक विद्यमान रहता है।

आर्सेनिक पीने के पानी तक मुख्यतया दो तरीकों से पहुंचता है। प्राकृतिक चट्टानों से आर्सेनिक के यौगिक रिसकर भूजल में पहुंचते हैं। अनेक औद्योगिक अपशिष्ट का निपटान भी जमीन पर किया जाता है जिनसे रिसकर आर्सेनिक भूजल तक पहंचता है। लकड़ी की सुरक्षा के लिए इस्तेमाल किये जाने वाले रसायनों, कीटनाशकों और कुछ विशेष प्रकार के कांच में आर्सेनिक का उपयोग किया जाता है। इन सभी पदार्थ के अव्यवस्थित निपटान से भूजल में आर्सेनिक की सांद्रता बढ़ सकती है। आर्सेनिक का कोई विशेष स्वाद या गंध नहीं होता, इसलिए पानी के रासायनिक परीक्षण के बिना इसकी उपस्थिति का पता नहीं किया जा सकता।

आर्सेनिक का स्वास्थ्य पर प्रभाव अनेक कारकों पर निर्भर करता है। शरीर में प्रवेश करने वाले आर्सेनिक यौगिक की गुणवत्ता और मात्रा, शरीर के आर्सेनिक के संपर्क में रहने की अवधि, शरीर किस प्रकार आर्सेनिक का सामना करता है - ये सभी कारक आर्सेनिक के प्रभाव को कम या अधिक करने में सहायक हैं। गर्भ में पल रहे शिशु, लंबी अवधि से बीमार व्यक्ति और बुजुर्ग व्यक्तियों पर आर्सेनिक का प्रभाव सर्वाधिक पड़ता है। अनेक अध्ययनों के अनुसार आर्सेनिक की अत्यधिक सांद्रता वाले पानी के सेवन से लोगों पर निम्न प्रभाव

तालिका - 1 : आर्सेनिक की सांद्रता कम करने हेतु प्रयुक्त विभिन्न तकनीकों के गुण और दोष

तकनीक	गुण	दोष
सह-अवक्षेपण	कम लागत मूल्य, आसानी से उपलब्ध और सामान्य रसायन, अन्य प्रदूषणकारी तत्त्वों के लिए भी प्रभावी	विषाक्त आपंक, चलाने के लिए प्रशिक्षित मानव-संसाधन, अनेक रसायनों का उपयोग और बड़े पैमाने पर ही कारगर
आयन एक्सचेंज	क्षमता और मीडियम पूर्व निर्धारित	महंगा मीडियम, रखरखाव पर ध्यान देना आवश्यक, कम सल्फेट और अल्प कुल घुलित पदार्थ वाले पानी के लिए ही उपयोगी
मेंब्रेन तकनीक	मीडियम पूर्व निर्धारित, आर्सेनिक हटाने की क्षमता संतोषजनक, कम स्थान की आवश्यकता, कम ठोस अपशिष्ट, दूसरे प्रदूषणकारी तत्त्वों के लिए भी प्रभावी	अधिक लागत मूल्य, प्रशिक्षित जन-संसाधन आवश्यक, कच्चे पानी का पूर्व उपचारण आवश्यक, ऑक्सीजन पदार्थ को हटाना आवश्यक
दूसरे अपशोषक	**विभिन्न प्रकार के उपलब्ध**	**विस्तृत अध्ययन आवश्यक**
लौह मिश्रित रेत	आसानी से उपलब्ध और सस्ती, पुनः उत्पादन की आवश्यकता नहीं	प्रौद्योगिकी पूर्ण विकसित नहीं, खतरनाक अपशिष्ट की समस्या
अपशोषण	अत्यधिक प्रभावी, नियमित आपंक की समस्या नहीं	नियमित प्रबोधन आवश्यक, समय-समय पर पुनः उत्पादन
सक्रिय अल्युमिना	बाजार में उपलब्ध, आर्सेनिक हटाने की क्षमता अच्छी, प्रशिक्षित जन-संसाधन की आवश्यकता नहीं, अन्य प्रदूषकों का भी निपटान	पी एच का निर्धारण, समय-समय पर प्रबोधन आवश्यक

पड़ते हैं :

- त्वचा का रूखा होना और रंग में परिवर्तन - चर्म कैंसर भी संभव है,
- पाचन शक्ति का क्षीण होना, और
- हाथ और पैर का सुन्न हो जाना ।

इनमें से कुछ स्वास्थ्य समस्याएं दूसरे रोगों के साथ भी होती हैं, इसलिए आर्सेनिक की विषाक्तता शुरु में स्पष्ट नहीं होती । जब लोग आर्सेनिक युक्त पानी पीते हैं तब आर्सेनिक उन पर धीमे-धीमे प्रभाव छोड़ता है । आर्सेनिक का शरीर पर प्रभाव 8 से 14 वर्षों के अंतराल पर स्पष्ट होता है । यदि इसकी जानकारी पहले हो तो इसके प्रभाव को कम किया जा सकता है ।

युनिवर्सिटी ऑफ कनेक्टीकट के इंजीनियर निक पी. निकोलेडिस के दल ने एक ऐसा फिल्टर तैयार किया है जो आर्सेनिक को पानी से अलग कर देता है और इसे ट्यूबवेल में सीधे लगाया जा सकता है । फिल्टर में लौह के छोटे टुकड़े और रेत भरी जाती है । लोहे में जंग लगने पर यह पानी के सारे आर्सेनिक को अवशोषित कर लेता है ।

एनवायर्नमेंट कनाडा के वैज्ञानिकों ने भी आर्सेनिक हटाने का एक नया तरीका खोजा है जो सस्ता और

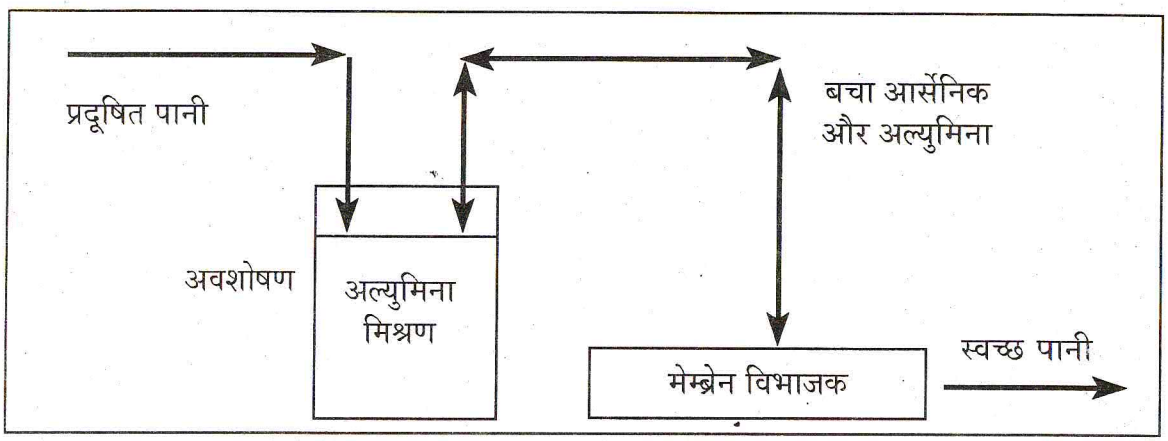

चित्र-1 : एनवायर्नमेंट कनाडा द्वारा विकसित पानी से आर्सेनिक हटाने की विधि

प्रभावी होने के साथ ही आसानी से एक जगह से दूसरे जगह ले जाया जा सकता है। इसमें अल्युमिना के चूर्ण का इस्तेमाल किया गया है। अल्युमिना में आर्सेनिक के अणु उसी प्रकार अवशोषित किये जाते हैं, जिस प्रकार से स्पौंज में पानी एकत्रित हो जाता है। इसके बाद अल्युमिना और पानी का मिश्रण एक माइक्रोफिल्टर में जाता है जो मेम्ब्रेन आधारित है। यहां पानी फिल्टर के पार चला जाता है, जबकि आर्सेनिक और अल्युमिना वापस रिएक्टर में आ जाते हैं। इस पद्धति से 99.99 प्रतिशत आर्सेनिक हटाया जा सकता है। जब पर्याप्त मात्रा में आर्सेनिक और अल्युमिना एकत्रित हो जाते हैं, तब एक क्षारीय घोल मिलाया जाता है जो अल्युमिना को आर्सेनिक से अलग कर देता है। यह पूरा उपकरण छोटा है इसे कहीं भी ले जाया जा सकता है। इसलिए वैज्ञानिकों का विचार है कि यह विकासशील देशों के लिए विशेष तौर पर उपयोगी है।

1980 के दशक से लगातार पश्चिम बंगाल की आर्सेनिक समस्या के बारे में चर्चा की जा रही है। लगभग 53.6 लाख व्यक्ति आर्सेनिक प्रभावी क्षेत्रों हैं अत्यधिक सांद्रता वाले पानी पीने को मजबूर हैं। केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड द्वारा किये गये एक सर्वेक्षण के अनुसार उन क्षेत्रों के निवासियों में मेलानोसिस, केरोटोसिस और गाग्रीन की समस्या है। इसके सामान्य लक्षण श्वसन सबंधी समस्याएं हैं। प्रभावन की अवधि, पानी की खपत और भोजन में पौष्टिक तत्त्वों की उपस्थिति, इत्यादि कारक आर्सेनिक का स्वास्थ्य पर प्रभाव नियंत्रित करते हैं। पीने के पानी में आर्सेनिक की सांद्रता नियंत्रित करने के लिए भारत में अनेक संस्थानों ने अध्ययन किया है। इसके लिए कई तकनीकों का प्रयोग किया जा रहा है, जैसे लौह और अल्युमीनियम हाइड्रॉक्साइड की मदद से अवक्षेपण, आयन एक्सचेंज, प्रतिलोम परासरण (रिवर्स ऑस्मोसिस) और उपयुक्त पदार्थ की सतहों पर अपशोषण (तालिका-1)। इन तकनीकों पर आधारित कुछ संयंत्र पश्चिम बंगाल में काम भी कर रहे हैं।

केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड द्वारा प्रकाशित, 'आर्सेनिक कंटैमिनेशन इन ग्राऊंडवाटर एंड इट्स कंट्रोल' नामक एक रिपोर्ट के अनुसार पश्चिम बंगाल में अपशोषण पद्धति पर आधारित जितने भी संयंत्र स्थापित हैं, वे कुछ समय के लिए ठीक काम करते हैं। कुछ समय के बाद अपशोषण वाले मीडियम को साफ करने की आवश्यकता होती है, नहीं तो संयंत्र ठीक काम नहीं करता। पश्चिम बंगाल के आर्सेनिक प्रभावी क्षेत्रों में लौह की सांद्रता भी अधिक है। लौह यौगिकों के थक्के बन जाते है जो मीडियम पर एकत्रित होते हैं और ये अपेक्षाकृत अधिक आर्सेनिक का अपशोषण करते हैं। समय-समय पर यदि आर्सेनिक युक्त लौह यौगिकों को नहीं हटाया जाता है तो मीडियम ठीक काम नहीं करता और इनकी क्षमता कम हो जाती है। अनेक संस्थाओं द्वारा आर्सेनिक हटाने के

तालिका - 2 : आर्सेनिक हटाने के संयंत्रों का तुलनात्मक विवरण

नाम	प्रतिक्रिया का प्रकार	मीडिया	क्षमता	वर्तमान लागत (रुपए)
आर. पी. एम. मार्केटिंग प्राइवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली	अपशोषण	सक्रिया अल्युमिना + ए ए एफ एस-50 (पेटेन्ट)	पी पी एम प्रति लीटर के आगम के साथ मीडिया की कुल क्षमता 2 लाख लीटर प्रतिवर्ष	4,43,000/- 20,000/- प्रति चार्ज
हार्मोनाइट इंपैक्स प्राइवेट लिमिटेड, कोलकाता	आयन एक्सचेंज	रेजिन-धातुओं के ऑक्साइड का मिश्रण (पेटेन्ट)	1 पीपीएम पर आधारित 3 लाख लीटर प्रतिवर्ष	92,300/- + 39,000/- प्रति चार्ज
पाल ट्रौकनर प्राइवेट लिमिटेड, कोलकाता	अपशोषण	एडसौर्पएएस (पेटेन्ट)	1 पीपीएम पर आधारित 9 लाख लीटर प्रतिवर्ष	74,100/- + 25,000/-प्रति चार्ज
ऑक्साइड इंडिया (कैटेलिस्ट) प्राइवेट लिमिटेड, दुर्गापुर	अपशोषण	सक्रिय अल्युमिना एएस-37	0.5 पीपीएम सांद्रता पर आधारित 4000 लीटर प्रतिदिन	47,000/- + 14,400/-प्रति चार्ज
अधियाकोन, कोलकाता	उत्प्रेरक अवक्षेपण/ इलेक्ट्रॉन एक्सचेंज	एएफडीड ब्लूएस-2000 (पेटेन्ट का आवेदन)	0.5 पीपीएम सांद्रता पर आधारित 4000 लीटर प्रतिदिन	75,000/-
ऑल इंडिया इंस्टीट्यूट ऑफ हाइजीन एंड पब्लिक हेल्थ, कोलकाता	ऑक्सीकरण+ कोगुलेशन+ फ्लोक्युलेशन+फिल्ट्रेशन	क्लारीनीकरण एजेंट फेरिक एलम	1,000 लीटर प्रति घंटा	35,000/- रसायनों का खर्च
आयनोकेम, कोलकाता	आयन एक्सचेंज	फेरिक हाइड्रॉक्साईड	0.5 पीपीएम सांद्रता पर आधारित 14,40,000 लीटर प्रतिदिन	39,000/-
एपाईरोन टैक्नोलॉजीज़ इंडिया प्राइवेट	अपशोषण	एक्वाबाईंड (पेटेन्ट)	1 पीपीएम सांद्रता पर आधारित 1000 लीटर	80,000/- + 15,000/-प्रति चार्ज
स्कूल ऑफ फंडामेंटल रिसर्च, कोलकाता	अवशोषण	अल्युमीनियम सिलिकेट+फेरिक हाइडॉक्साईड	0.5 पीपीएम सांद्रता पर आधारित 2000 लीटर प्रतिवर्ष	8.000/- +1,200/- प्रति चार्ज
पब्लिक हेल्थ इंजिनियरिंग, पश्चिम बंगाल सरकार	अपशोषण	रेड हेमेटाईट + क्वार्ट्ज + रेत सक्रिय अल्युमिना	600-1000 लीटर प्रति घंटा	27,000/-

संयंत्र विकसित किये गये हैं, जिनकी विशेषताएं तालिका -2 में दी गयी हैं। अक्तूबर 2001 में अमरीका के एनवायर्नमेंटल प्रोटेक्शन एजेंसी ने आपूर्ति किये जाने वाले पेय जल में आर्सेनिक की सांद्रता नये सिरे से निर्धारित की। यह मानक 0.01 पीपीएम (दस लाख का 0.01 भाग) है और इसे लागू करने की अवधि जनवरी 2006 से शुरू होगी। इस संदर्भ में विश्व स्वास्थ्य संगठन का मानक 10 माइक्रोग्राम प्रति लीटर है। पश्चिम बंगाल और बांगलादेश के भूजल में इसकी सांद्रता अनेक स्थानों पर 300 से 4000 माइक्रोग्राम प्रति लिटर तक है।

आर्सेनिक को पेय जल से हटाने की अनेक तकनीकें उपलब्ध हैं और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी अनेक प्रौद्योगिकी विकसित की जा रही है, फिर भी करोड़ों व्यक्ति इस समस्या से ग्रस्त हैं।

❑❑❑

विज्ञान कविता

वैज्ञानिक

'वैज्ञानिक' का 'विज्ञान' ही धर्म,
'कलाकार' की दुनिया है 'कला'।
पलट के देखो इतिहास के पृष्ठों को,
समर्पित व्यक्तित्व सदा अकेला चला।

वैज्ञानिक न जाने देशों की सीमा,
कलाकार न जाने प्रकृति का बँटवारा,
चिकित्सक न जाने अपना-पराया,
अध्यापक का अध्याय है विद्यालय सारा।

न्यूटन, रमन, भाभा ही पूर्वज,
सारे वैज्ञानिक उनकी संतान।
विज्ञान का योग मानव-कल्याण से,
वैज्ञानिक का है लक्ष्य महान।

विज्ञान पहुंचाना हर जन-जन तक,
स्वभाषा में उपलब्ध कराना।
यह विज्ञान धर्म, वैज्ञानिक कर्म,
विश्व को 'वैज्ञानिक' दृष्टिकोण बनाना।

आशा त्रिपाठी,
वरिष्ठ कंप्यूटर वैज्ञानिक

पौधों का वानस्पतिक नामकरण

रामलखन सिंह सिकरवार,
शांता मेहरोत्रा एवं पी. पुष्पांगदन
भेषज अभिविज्ञान एवं लोक औषध प्रभाव-विज्ञान विभाग
राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

संसार के प्रत्येक देश में मातृभाषा के अतिरिक्त अनेक स्थानीय भाषाएं बोली जाती हैं, जिनमें पौधों के नाम भी भाषानुसार भिन्न-भिन्न होते हैं । इसलिए किसी देश या क्षेत्र की भाषा में दिये गये पौधों के नाम से दूसरे देश या क्षेत्र में उस नाम से पहचानना कठिन ही नहीं अपितु असंभव है । अत: वनस्पति विज्ञान के क्षेत्र में दिनों दिन हुई पौधों की नयी खोज के साथ-साथ वनस्पति विदों ने यह अनुभव किया कि पौधों का नामकरण ऐसा किया जाये जिससे समस्त संसार में उस पौधे को एक ही नाम से जाना जाये । इसके लिए लैटिन भाषा सबसे उपयुक्त मानी गयी ।

18वीं शताब्दी के पूर्व पौधों के नाम सामान्यत: बहुनाम पदी (Polynomials) होते थे, अर्थात् ये श्रृंखला में कई शब्दों से मिलकर बनते थे; जैसे "साइडा कॉर्डिफोलिया" (Sida cordifolia) का नाम प्लूकेनेट ने 1692 में Althaea madraspatana, subrotundo folio molli & hirsuto multipilis दिया था । यह कठिन पद्धति थी और इसे याद रखना भी कठिन था ।

द्विनाम पद्धति (Binomial nomenclature) का सर्वप्रथम प्रतिपादन 1623 में गास्पर्ड बॉहिन ने अपनी पुस्तक 'पिनाक्स' (Pinax) में किया था । उसने पौधों को वांशिक (generic) तथा जातीय (specific) विशेषण (नाम) प्रदान किये थे । बाद में 1753 में लिनियस ने इस द्विनाम पद्धति का विस्तृत विवरण अपनी पुस्तक "स्पेसीज प्लान्टेरम" (species plantarum) में प्रस्तुत किया तथा अंतर्राष्ट्रीय ख्याति अर्जित की । इस पद्धति के अनुसार प्रत्येक पौधे का नाम दो शब्दों से मिलकर बना होता है । जैसे, पीपल का वानस्पतिक नाम "फाइकस रेलिजिओसा" (Ficus religiosa) दो शब्दों 'फाइकस' तथा 'रेलिजिओसा' से मिलकर बना है । द्विनाम पद्धति का पहला शब्द "फाइकस", वंश (genus) को सूचित करता है जिसमें वह पौधा आता है, जो सदा ही अंग्रेजी के बड़े अक्षर से लिखा जाता है; तथा दूसरा शब्द "रेलिजिओसा" उस वंश की जाति (species) को सूचित करता है, जो अंग्रेजी के छोटे अक्षर से लिखा जाता है । ये नाम लैटिन भाषामूल से व्युत्पन्न होते हैं और इटैलिक लिपि में लिखे जाते हैं । पांडुलिपि में ये अधोरेखांकित किये जाते है ।

लिनियस ने "स्पेसीज प्लान्टेरम" में द्विनाम पद्धति पर आधारित पौधों के नामकरण के कुछ सिद्धांत प्रतिपादित किये, जिनके अनुसार (1) दो वंश एक ही नाम के नहीं हो सकते एवं एक वंश के अंदर दो जातीय नाम समान नहीं हो सकते, (2) यदि एक वंश को दो या अधिक वंशों में विभाजित किया जाता है तो वंश का मौलिक नाम यथावत रखा जायेगा तथा (3) प्रकाशन की प्राथमिकता को महत्व दिया जाय ।

इसके पश्चात् 1813 में अगस्टन डी कन्डोल ने अपनी पुस्तक "थ्यौरीज एलिमैन्टैरी डी ला बॉटेनिकी" (Theories elementaire de la botanique) में द्विनाम पद्धति सिद्धांतों का प्रतिपादन किया । इनमें से अनेक सिद्धांत लिनियस के कार्यों से लिये गये थे ।

पौधों के नामकरण का प्रथम संगठनात्मक तथा एकरूपता प्रदान करने का प्रयास अलफान्सो डी कण्डोल ने 1867 में पेरिस में आयोजित प्रथम अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में किया था । इस सम्मेलन में डी कन्डोल ने वानस्पतिक

नाम पद्धति के नियम पारित किये, जो उसके पिता (अंगस्टन डी कन्डोल) तथा लिनियस द्वारा दिये गये सिद्धांतों पर आधारित थे। इन्हें 1867 में 'पेरिस कोड' नाम से प्रकाशित किया गया। इन नियमों पर आधारित कई अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित किये गये। प्रारंभ में अमरीकी तथा यूरोपीय वनस्पतिविदों के मध्य कुछ नियमों को लेकर मतभेद थे लेकिन 1935 के केम्ब्रिज सम्मेलन में सभी वनस्पतिविद सर्व सम्मति से एकमत हुए। अभी तक 16 सम्मेलन आयोजित हो चुके हैं तथा प्रत्येक सम्मेलन के बाद इन नियमों को "इन्टरनेशनल कोड ऑफ बॉटेनिकल नोमेनक्लेचर" (ICBN) नाम से प्रकाशित किया जाता है।

कोड को तीन भागों में विभक्त किया गया है :- (1) सिद्धांत, (2) नियम एवं शिफारिशें तथा (3) कोड में सुधार के लिए प्रावधान। इसके अतिरिक्त तीन परिशिष्टयां और प्ररूप निर्धारण के लिए निर्देश दिये गये हैं।

सिद्धांत वानस्पतिक नामकरण के 6 आधार हैं :

1) पौधों का नामकरण जन्तुओं के नामकरण से भिन्न है।
2) वर्गिकीय वर्ग (Taxonomic group) के नामों का प्रयोग नामकरण प्ररूपों के माध्यम द्वारा निर्धारित हैं।
3) वर्गिकीय वर्गों का नामकरण प्राथमिकता के सिद्धांत पर आधरित है।
4) किसी विशेष परिस्थिति को छोड़कर वर्गिकीय वर्ग का एक ही नाम होगा जो नियमों के अनुसार पूर्व का हो।
5) वर्गिकीय वर्गों के वैज्ञानिक नाम लैटिन भाषा में या लैटिन भाषा से व्युत्पन्न हों।
6) नामकरण के नियम पुरानी तारीख से ही प्रभावी माने जायेंगे जब तक कि उनकी स्पष्ट रूप से सीमा निर्धारित न की गयी हो।

कुछ मुख्य नियम निम्न इस प्रकार हैं-

1. प्राथमिकता का सिद्धांत :

नाम पद्धति के सभी नियमों में यह महत्वपूर्ण है। ऐसा देखा गया है कि एक ही पौधे का विभिन्न स्थानों पर विभिन्न वानस्पतिक नामों से वर्णन किया गया है। प्राथमिकता के सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक वर्गिकीय वर्ग (Taxonomic group) उसके प्रचीनतम नाम से पहचाना जाना चाहिए। निम्न उदाहरण प्राथमिकता के सिद्धांत को स्पष्ट करता है - क्लीओम गाइनेन्ड्रा (Cleome Gynandra L.)

1) इस पौधे का सर्वप्रथम विवरण लिनियस ने 1753 में दिया था तथा इसका नाम Cleome gynandra रखा।
2) 1762 में लिनियस ने क्लीओम पेन्टाफिल्ला (Cleome pentaphylla L.) नाम से पुनः इस पौधे का वर्णन किया।
3) डी कन्डोल ने 1824 में इसे गाइनेन्ड्रोप्सिस वंश में भेजकर इसे गाइनेन्ड्रोप्सिस पेन्टाफिल्ला (Gynandropsis pentaphylla (L.) DC.) नाम दे दिया।
4) 1960 में इल्टिस ने वंश के पुराने नाम को रखते हुए क्लिओम तथा गाइनेन्ड्रोप्सिस को एक कर दिया और क्लिओम वंश को उचित ठहराया।

यहां एक ही पौधे के कई नाम दिये गये हैं। अतः प्राथमिकता के सिद्धांत के अनुसार पहला एवं प्राचीन नाम क्लिओम गाइनेन्ड्रा जो लिनियस द्वारा 1753 में दिया गया, ही मान्य रहा। अन्य नामों को अस्वीकृत कर दिया गया। कुल (Family) से ऊपर यह नियम लागू नहीं होता है।

2. प्ररूप विधि

प्रतिरूप (specimen) (कभी-कभी फोटोग्राफ या रेखाचित्र भी) की वह हरबेरियम शीट जो लेखक द्वारा पौधे के प्रमाणिक वर्णन के लिए प्रयुक्त की गयी थी प्ररूप प्रतिरूप कहलाती है।

1 जनवरी 1958 को या इसके बाद किसी भी नये वर्गिकीय वर्ग का प्रकाशन केवल तभी वैध माना जायेगा जब उसका नाम पद्धति प्ररूप निर्दिष्ट किया गया हो।

नाम पद्धति प्ररूप वह मौलिक घटक है जिससे पौधे का नाम स्थायी रूप से संलग्न हो, चाहे वह सही

नाम हो या पर्यायवाची । स्टोकहोम कोड (1952) के अनुसार प्ररूप निम्न प्रकार के माने गये हैं-

1) **होलोटाइप :** यह लेखक द्वारा नामकरण के लिए प्रयुक्त प्रतिरूप या अन्य सामग्री है ।
2) **आइसोटाइप :** यह वह प्रतिरूप है जो होलोटाइप की प्रतिलिपि हो ।
3) **लेक्टोटाइप :** यह मौलिक सामग्री से लिया गया प्रतिरूप है जब होलोटाइप खो गया हो या लेखक द्वारा नामकरण के समय होलोटाइप निर्दिष्ट न किया गया हो ।
4) **नियोटाइप :** यह नाम पद्धति प्ररूप के लिए चयनित प्रतिरूप है जब संपूर्ण मौलिक सामग्री नष्ट हो गयी है ।
5) **पैराटाइप :** यह होलोटाइप के अलावा अन्य उद्धरित प्रतिरूप है जो मौलिक वर्णन के साथ दिया गया हो ।
6) **सिनटाइप (Syntype) :** एक से अधिक प्रतिरूप जो सम्मिलित रूप से लेखक द्वारा नाम पद्धति प्ररूप के रूप में प्रयुक्त किये गये हों ।
7) **को-टाइप :** उसी पादप से लिया गया दूसरा प्रतिरूप जिससे होलोटाइप एकत्रित किया गया था ।
8) **टोपोटाइप :** उसी स्थान से लिया गया प्रतिरूप जहां से होलोटाइप एकत्रित किया गया था ।

3. कुलों के नाम :

कुल का नाम बहुवचन विशेषण तथा प्ररूप वंश (Type genus) में 'aceae' प्रत्यय जोड़कर लिखा जाता है । जैसे वंश Rosa से Rosaceae तथा Cucurbita से Cucurbitaceae.

केवल कुल 8 इसके अपवाद हैं, क्योंकि इनके अंत में प्रत्यय 'aceae' नहीं है । यद्यपि इन्हें इनके लंबे प्रयोग के कारण संरक्षित कर लिया गया है फिर भी इनके वैकल्पित नाम दिये गये हैं जिनका अंत कोड के नियमानुसार 'aceae' प्रत्यय से होता है जैसे -

Plamae	-	Arecaceae
Gramineae	-	Poaceae
Cruciferae	-	Brassicaceae
Leguminosae	-	Fabaceae
Guttiferae	-	Clusiaceae
Umbelliferae	-	Apiaceae
Labiatae	-	Lamiaceae
Compositae	-	Asteraceae

4. वांशिक नामों का संरक्षण :

यह प्राथमिकता के सिद्धांत की परिमितता है । कुछ नाम यद्यपि प्राचीनतम नहीं थे, फिर भी लंबे प्रयोग व प्रचलन के कारण एकमत से मान्य कर लिये गये हैं; जैसे निम्न वंश के तीन भिन्न-भिन्न नाम दिये गये थे -

Meibomia 1759 में
Pleurobolus 1812 में
Desmodium 1813 में

यद्यपि प्राथमिकता के सिद्धांत के अनुसार Meibomia वंश का नाम मान्य होना चाहिए, परंतु Desmodium नाम वनस्पति साहित्य में अधिक प्रचलित है अतः इसे संरक्षित कर मान्य कर लिया गया तथा अन्य को निरस्त कर दिया गया ।

5. लैटिन निदान :

1 जनवरी 1935 से पहले प्रकाशित वर्गिकीय वर्ग के वर्णन को मान लिया गया चाहे वह किसी भी भाषा में था । इस तिथि के पश्चात् कोई भी वर्णन मान्य नही होगा जब तक कि उसका लैटिन अनुवाद साथ नहीं हो । लैटिन भाषा इसलिए उपयोग में लायी जाती है क्योंकि लैटिन भाषा अपने अर्थों में लाक्षणिक एवं परमशुद्ध है । अपने संक्षिप्त स्वरूप के कारण यह मुख्यतया पौधों के सही वर्णन में उपयोगी है ।

6. लेखकों के नाम का उद्धरण

किसी भी स्तर के वर्गिकीय वर्ग का नाम मान्य नहीं होगा जब तक कि उसके साथ में (सामान्यतया संक्षिप्त रूप में) लेखक का नाम न हो । जैसे -

Liliaceae Adoms
Lilium L.
Lilium superbum L.

इसका आशय यह है कि लिलिएसी कुल का सर्वप्रथम नाम एडम्स (Adoms) ने दिया था। इसी तरह लिलियम (Lilium) वंश का नाम लिनियस ने तथा जाति का नाम (Lilium superbum) भी लिनियस ने दिया था। कुछ मुख्य उदाहरण निम्न हैं।

(i) ex का प्रयोग

यदि किसी पौधे का नामकरण एक लेखक द्वारा, परंतु प्रामाणिक ढंग से प्रकाशन दूसरे लेखक द्वारा किया जाये तो पहले लेखक के नाम के बाद ex लगाकर दूसरे लेखक का नाम लिखना चाहिए जैसे -

Capparis casiantha R. Br. ex DC.

अर्थात् इस पौधे का नाम Capparis casiantha राबर्ट ब्राउन (R. Br.) द्वारा दिया गया परंतु नाम के साथ वर्णन नहीं दिया था। बाद में डी कन्डोले (DC.) ने इसका प्रामाणिक वर्णन दिया।

(ii) in का प्रयोग

जब एक लेखक का कार्य (पौधे का नाम तथा वर्णन) दूसरे लेखक के कार्य में प्रकाशित हो तब in शब्द के द्वारा दोनों लेखकों का नाम जोड़ दिया जाता है - जैसे-

Osbeckia Wyaadensis C.B. Clarke in Hook. f. FBI 2:521, 1879

अर्थात् इस पौधे का नाम तथा वर्णन क्लार्क ने दिया तथा यह हुकर के फ्लोरा ऑफ ब्रिटिश इंडिया में प्रकाशित हुआ।

(iii) et तथा et al का प्रयोग

जब पौधे का नाम तथा वर्णन दो लेखकों द्वारा मिलकर प्रकाशित किया जाये तो दोनों लेखकों को et के साथ जोड़ दिया जाता है जैसे - Zenkeria sebastinei Henery et Chandrabose

जब पौधे का नाम तथा वर्णन दो से अधिक लेखकों द्वारा प्रकाशित किया जाता है तो उद्धरण केवल पहले लेखक तक सीमित रहता है उसके बाद et al., लगा दिया जाता है जैसे - Indotriticha tirunelveliana Sharma et al.

(iv) emend का प्रयोग

यदि लेखक द्वारा दिया गया पौधे का वर्णन अपूर्ण है और इसे दूसरे लेखक द्वारा पूर्ण कर प्रकाशित किया जाय तो पहले लेखक का नाम तो रहेगा ही इसके बाद emend लगाकर दूसरे लेखक का नाम भी लिखा जायेगा जिसने इसके वर्णन में सुधार किया है, जैसे - Manisuris farfilculate Fischer emend Jain

7. नामों का प्रामाणिक प्रकाशन :

जब कोई नाम कोड (संहिता) के नियम संख्या 32-45 के अनुसार प्रकाशित किया गया हो तो ही वह वैध तथा अवैध माना जाता है।

(i) वैध नाम

प्रामाणिक रूप से प्रकाशित नाम या विशेषण जो कोड के सभी नियमों के अनुरूप हो।

(ii) अवैध नाम

प्रामाणिक रूप से प्रकाशित नाम या विशेषण जो कोड के एक या अधिक नियमों के प्रतिकूल हों।

8. विभाजित किये गये वर्ग के नामों को यथावत रखना

जब कोई वंश दो या अधिक वंशों में विभाजित किया जाता है तो उसका मौलिक नाम अवश्य रखा जाना चाहिए। इसी प्रकार -

जब कोई जाति किसी अन्य वंश में मिला दी जाती है तो जातीय विशेषण (specific epithet) बना रहता है जैसे - लिनियस ने हेमलौक को Pinus canadensis L. नाम से वर्णन किया। केरर (Carriere) ने बाद में इस पौधे को Tsuga वंश की जाति में पाया और इस जाति को Tsuga वंश में भेज दिया और नया कम्बीनेशन बनाया Tsuga canadensis (L.) Carr., यहां जाति

का नाम canadensis यथावत रहा ।

9. नामों का चुनाव जब दो या अधिक समानांतर वाले वर्गीय वर्गों को मिलाया जाय

ऐसी स्थिति में प्राचीनतम नाम बनाये रखा जाता है । यदि दोनों नाम एक ही तिथि के हों तो लेखक जो वर्गिकीय वर्गों को जोड़ता है, को अपनी इच्छा से उनमें से एक नाम को चुनने का अधिकार होता है, जैसे - लीनियस ने Waltheria indica तथा W. americana दोनों पौधों को एक ही तिथि (1 May 1753) को प्रकाशित किया । राबर्ट ब्राउन ने 1818 में देखा कि दोनों पौधे समान हैं । अतः उसने दोनों नामों में से एक Waltheria indica को चुना जो सही माना गया ।

10. नामों की अस्वीकृति

वह नाम अस्वीकार कर दिया जाना चाहिए जो अवैध है । कोई नाम निम्न परिस्थिति में अवैध माना जायेगा -

i) जब नाम पद्धति के अनुसार आवश्यकता से अधिक बड़ा हो ।

ii) जब कोड में निर्दिष्ट धाराओं का उल्लंघन करके प्रकाशित किया गया हो ।

iii) यदि वह बाद का पर्यायवाची (Later Homonym) हो ।

iv) यदि वह लैटिन भाषा का व्युत्पन्न न हो ।

v) यदि वह जातीय नाम ऐसे कार्य में प्रकाशित हुआ हो जिसमें पूर्ण रूप से नाम पद्धति नियमों का पालन नहीं किया गया हो ।

vi) यदि वह टोटोनिम (Tautonym) हो अर्थात् वांशिक नामों की पुनरावृत्ति होती हो ।

vii) उन नामों को भी छोड़ देना चाहिए जिनका विभिन्न अर्थों में प्रयोग के कारण वह भूल या भ्रम का स्थायी स्रोत बने । इस प्रकार छोड़े गये नाम *"नोमीना एम्बीगुआ"* कहलाते हैं ।

जब किसी पौधे का जातीय विशेषण (specific epithet) किसी मनुष्य का नाम है और उनका अंत व्यंजन (Consonant) से होता है तो अंत में अनुलग्न 'ii' (suffix) को जोड़ दिया जाता है जैसे - Koenig से koenigii, Jain से Jainii । और जब er से समाप्त होता है तो उसे 'eri' में बदल दिया जाता है जैसे Kerneri । स्वर (vowel) में समाप्त होने वाले नामों में केवल 'i' द्वारा समापन कर दिया जाता है, जैसे - santapau से santapaui । पौधों के नाम चाहे व्यक्ति, देवी-देवता या स्थान के नाम पर रखे जायें उनकी व्युत्पत्ति लैटिन भाषा में होनी चाहिए ।

❑❑❑

'वैज्ञानिक' में प्रकाशित सामग्री का आप बिना अनुमति लिये उपयोग कर सकते हैं । परंतु इस बात का उल्लेख करना अनिवार्य होगा कि अमुक सामग्री 'वैज्ञानिक' से साभार ली गयी है ।

– संपादक

रोमांचक घटना

मौत के मुंह से "बाल-बाल बचे"

राजकुमार जैन
ई-35/4, डी. आर. डी. ओ. टाउनशिप फेज़-2,
सी वी रामन नगर, बैंगलोर - 560 093

(पृथ्वी की सतह से छत्तीस हजार फीट की ऊंचाई पर, दो वायुयान एक-दूसरे के मार्ग में आ जाते हैं। एक भीषण वायु दुर्घटना होने ही वाली थी कि एक वायुयान गोता लगा जाता है। यात्रियों की चीख से आकाश गूंज उठता है किंतु क्या वे सुरक्षित बच निकलते हैं ? एक सत्य घटना पर आधारित मार्मिक कहानी।)

31 जनवरी 2001 की बात है। दोपहर का समय था। सूर्य पश्चिम की तरफ बढ़ चला था। आकाश साफ था। ऐसे ही समय में जापान के वायुक्षेत्र में दो यात्री विमान उड़ान भर रहे थे। सूर्य की किरणें, वायुयानों से परावर्तित होकर, चकाचौंधी मचा रहीं थीं। चमकते वायुयान दूर से भी देखे जा सकते थे। इनके अलावा वायुक्षेत्र प्रायः शांत था।

इन दो उड़ानों में से एक उड़ान को उड़ान क्रमसंख्या 958 के नाम से जाना जाता था। यह उड़ान, डी सी-10 नाम के वायुयान द्वारा संपन्न हो रही थी। डी सी-10 यानी उड़ान संख्या 958 दक्षिण कोरिया के पूसन हवाई अड्डे से उड़ी थी। इसे कुछ देर बाद जापान के टोकियो स्थित नरीता हवाई अड्डे पर उतरना था। यह उड़ान सैंतीस हजार फीट की ऊंचाई पर यात्रा कर रही थी।

दूसरी उड़ान जापान के ही टोकियो वायुक्षेत्र में स्थित हमेडा वायुअड्डे से उड़ी थी। इस उड़ान को क्रमसंख्या 907 के नाम से जाना जाता था। यह उड़ान एक बोईंग-747 वायुयान के द्वारा संपन्न हो रही थी। इस उड़ान को नाहा वायुअड्डे की ओर जाना था। इस उड़ान को उन्तालीस हजार फीट पर पहुंच कर अपनी यात्रा करनी थी। इसी ऊंचाई पर पहुंचने के लिए वह तेजी से ऊपर की तरफ बढ़ रहा था।

इन दोनों उड़ानों पर वायु यातायात नियंत्रण कक्ष लगातार अपना नियंत्रण बनाये हुए था। दोनों-उड़ानों के निर्धारित मार्गों से ऐसा लगता था कि वे एक ही समय पर, येशु शहर के वायुक्षेत्र में पहुंचने वाली हैं। यह वायुक्षेत्र टोकियो नियंत्रण कक्ष के अधिकार क्षेत्र में आता है। इस कारण यह नियंत्रण कक्ष ही इस समय इनकी सुरक्षित उड़ान, मार्ग निर्देशन के लिए जिम्मेदार था। नियंत्रण का कार्य इस समय एक प्रशिक्षणार्थी कर रहा था। दोनों वायुयानों के वायुमार्गों की विवेचना करने पर, उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि दोनों ही वायुयान लगभग एक ही समय, एक ही ऊंचाई और एक ही स्थान पर पहुंचने वाले हैं। चढ़ता वायुयान उड़ान क्रमांक 907 का मार्ग, सीधे चलते 958 के मार्ग को लगभग सैंतीस हजार फीट पर काट रहा था। उड़ान सुरक्षा की दृष्टि से यह एक चिंता का विषय था। वह दोनों उड़ानों को जिनमें 677 व्यक्ति सवार थे किसी प्रकार भी मुश्किल में नहीं डाल सकता था। उड़ान सुरक्षा की दृष्टि से, उन्हें उचित निर्देश देकर एक दूसरे से अलग करना आवश्यक था।

नियंत्रक ने विचार कर, यह निर्णय लिया कि 907 को अपनी चढ़ान जारी रखनी चाहिए किंतु सुरक्षा की दृष्टि से 958 को नीचे पैंतीस हजार फीट पर उतर जाना चाहिए। उसे विश्वास था कि यदि ऐसा किया गया तो जब 958 पैंतीस हजार फीट पर होगा, तो 907 सैंतीस हजार फीट पर पहुंच चुकेगा। ऐसा निर्णय लेते ही उसने उड़ानों को आवश्यक निर्देश दे दिये। इस समय कुछ और उड़ानें भी इस वायुक्षेत्र में थी, नियंत्रक उन्हें नियंत्रित करने में व्यस्त हो गया।

थोड़ी ही देर बाद जब नियंत्रक वापिस 958 उड़ान की तरफ आया तो उसे आश्चर्य हुआ कि वह अब भी सैंतीस हजार फीट पर ही है। उसने 958 को शीघ्र ही, नीचे 35,000 फीट पर उतरने का आदेश दिया। आदेश

मिलते ही 958 नीचे उतरने लगा। नियंत्रक ने जब 907 उड़ान की तरफ ध्यान दिया तो उसे आश्चर्य हुआ कि वह नीचे उतर रही है। उसने 907 को भी आदेश दिया कि वह ऊपर चढ़े और 39,000 फीट पर जाकर यात्रा करे। यह यदि हो गया होता तो सब कुछ ठीक हो गया होता किंतु कहीं कुछ ऐसा हो गया था कि यह संभव नहीं हो पाया।

958 की समस्या

958 सैंतीस हजार फीट पर यात्रा कर रहा था। नियंत्रक कक्ष ने जब उसे पैंतीस हजार फीट पर उतरने के लिए कहा तो उसने उसका पालन किया। इसके बाद भी उसकी "टक्कर रोकनेवाली प्रणाली" उसे एक अन्य विमान के अपने सामने होने की चेतावनी दे रही थी। इस प्रणाली में भी उसे नीचे उतरने का ही निर्देश दिया था। कुछ देर बाद ही 958 के उड़ाकों ने अपने मार्ग में एक अन्य वायुयान को उतरते पाया। वे आश्चर्यचकित से रह गये। यह 907 उड़ान थी जो नीचे उतर रही थी।

907 की समस्या

907 उड़ान जब ऊपर चढ़ रही थी और लगभग छत्तीस हजार फीट पर थी, तो नियंत्रण कक्ष से उसे नीचे पैंतीस हजार फीट पर उतरने के लिए कहा गया। ऊपर चढ़ती उड़ान 907 के उड़ाके भी आश्चर्यचकित थे कि उसे ऐसा करने के लिए क्यों कहा जा रहा है ? किंतु उन्होंने आज्ञा का पालन किया। वे अभी उतर ही रहे थे कि उन्हें आदेश मिला कि वे ऊपर चढ़ें और उन्तालीस हजार पर यात्रा प्रारंभ करें। यह आदेश पहले वाले आदेश के विपरीत था। तभी उसकी "टक्कर रोकनेवाली प्रणाली" ने भी उसे 2500 फीट प्रति मिनट की रफ्तार पर ऊपर चढ़ने के लिए कहा। इसका सीधा सा अर्थ था कि पैंतीस हजार फीट पर बढ़ने में वायुयानों के टकराने की संभावना है। उड़ाके, बदलते निर्देशों और अपने वायुयान के इंजनों की हालत में, जिस रफ्तार से उन्हें ऊपर जाने के लिए कहा गया था, उससे जाने में असमर्थ से थे। उन्होंने वायु-यातायात नियंत्रक और अपनी "टक्कर रोकनेवाली प्रणाली" की चेतावनी, निर्देशों की अवहेलना की और वे उड़ान 907 को नीचे उतारते रहे।

नियंत्रक की समस्या

नियंत्रक ने पहली बार जब निर्णय लिया था, तो वह पूर्णतया सही था। उसके अनुसार उसने 958 को उतरने और पैंतीस हजार फीट पर आने के लिए कहा था किंतु वास्तव में, गलती से वह यह आदेश ऊपर चढ़ती उड़ान 907 को दे गया था। गलती से उसने 907 को पैंतीस हजार फीट पर उतरने का आदेश दिया था। 958 को उसने आदेश दिया ही नहीं था।

दोबारा जब उसने आदेश दिये तो वे बिल्कुल ठीक थे किंतु उस समय 907 नीचे पैंतीस हजार फीट की तरफ उतर रहा था। 958 भी उसी ऊंचाई पैंतीस हजार फीट की तरफ जा रहा था। दूसरे वाले आदेश सही थे किंतु 907 उड़ान ने इस बदले आदेश की अवहेलना कर दी। वह लगातार नीचे उतरता रहा। दुर्घटना की पूरी तैयारी हो चुकी थी किंतु क्या ऐसा हुआ ?

बाल-बाल बची दुर्घटना

907 और 958 दोनों ही उड़ानें, 35,000 फीट की तरफ बढ़ रही थीं। 958 के उड़ाकों ने, 907 उड़ान को देखा भी था किंतु 907 के उड़ाके इससे अनभिज्ञ थे। 907 के उड़ाकों ने पैंतीस हजार फीट पर पहुंचते ही, सीट बेल्ट बांधने के निर्देश को बुझा दिया था। अभी यह किया ही था कि 907 के उड़ाके को अपने सामने, एक अन्य वायुयान दिखलाई पड़ा। एक क्षण की भी देर, दोनों वायुयानों के टकराने के लिए पर्याप्त थी। 907 के उड़ाकों को पता नहीं कहां से सुबुद्धि आयी, बिना सोचे समझे, उड़ाके ने अपने वायुयान को गोता दिला दिया। इस समय उसके उतरने की दर चार हजार फीट प्रतिमिनट से भी आगे निकल गयी। यात्री उड़ान सहायक दल के सदस्यों के पैर जमीन से उठ गये थे। जो सुरक्षा पेटी नहीं बांधे थे, वे सीट पर से ऊपर उठ गये। सामान वाली ट्राली छत से टकरा गयी और वायुयान के अंदर उठती

(शेष भाग कृपया पृष्ठ -49 पर देखें)

टिप्पणियां

1. दूध : एक संपूर्ण आहार

दूध एक ऐसा तरल पदार्थ है जिसे न तो रसायनज्ञ बना सके और न ही इसका संश्लेषण ही कर सके । पोषक पदार्थों के सस्ते स्रोत के रूप में इसका कोई दूसरा प्रतिस्थापी नही खोजा जा सका है । वास्तविक रूप में दूध एक विषमांगी तरल होता है, जिसमें एक से अधिक द्रव प्रावस्थाएं होती हैं तथा जिनमें एक दूसरे से कम भिन्नता पायी जाती है । दूध के कुछ अवयव, लेक्टोस खनिज, पानी में घुलनशील विटामिन, वसा में घुलनेवाले विटामिन आदि हैं इसमें प्रोटीन कोलाइडी अवस्था तथा वसा पायस अवस्था में पाये जाते हैं ।

दूध को पोषक पदार्थों का भंडार भी कहा जाये तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी । इसमें आवश्यक प्रोटीन जैसे केसीन, पर्याप्त शर्करा, लेक्टोस, खुशबूदार वसा, आवश्यक खनिज, खासतौर पर कैल्शियम तथा फॉस्फोरस, ऐसे विटामिन जो वसा तथा पानी में घुलनशील होते हैं । दूध का संघटन कुछ अन्य बातों जैसे जाति, नस्ल, अलग-अलग पशुओं, मौसम, उनको दी जाने वाली खुराक आदि पर निर्भर करता है । हमारे देश में भैंस का दूध पोषण का एक अच्छा साधन है ।

इसके अतिरिक्त गाय, बकरी तथा भेड़ का दूध भी प्रयोग किया जाता है । दूध का संघटन विभिन्न जाति के दुधारू पशुओं में भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं ।

तालिका-1 : विभिन्न दुधारू पशुओं के दूध का विश्लेषण (मात्रा प्रतिशत में)

जाति	वसा	प्रोटीन	लैक्टोस	पानी	ठोस	राख
स्त्री	3.10	1.25	7.20	88.20	11.80	0.25
गाय	3.80	3.50	4.80	87.25	12.75	0.65
भैस	7.00	3.60	5.50	83.00	17.00	0.90
बकरी	4.00	3.50	4.30	87.50	12.50	0.70
ऊंटनी	5.10	3.25	4.95	86.00	14.00	0.70
घोड़ी	1.65	2.20	6.91	88.92	11.08	0.32

दूध के अंदर निम्नलिखित अवयव भी पाये जाते हैं

लिपिड्स :

दूध का मुख्य अवयव इसमें विद्यमान वसा की मात्रा होती है, क्योंकि इसकी मात्रा से दूध की कीमत तथा गुण आंके जाते हैं । दूध की वसा में मुख्य रूप से ट्राइग्लिसराइड्स 98.99%, फास्फोलिपिड्स 0.2-1.0%, तथा स्टेरोल्स 0.25-0.40% पाये जाते हैं । कुछ स्वतंत्र वसीय, मोम, स्क्वालीन आदि भी बहुत कम मात्रा में दूध की वसा में घुले रहते हैं; विटामिन A, D, E तथा K और कुछ एन्जाइम्स जैसे जैन्थीन, ऑक्सीडीन, क्षारीय फॉस्फेट्स तथा कुछ धातुएं जैसे कॉपर, लोहा भी वसा की गोलिकाओं में पायी जाती है । इसमें वसीय अम्ल जैसे ओलिक, पामिटिक, स्टियरिक, माइरिस्टिक, ब्यूटायरिक, लिनोलिक आदि भी पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं । स्त्री के दूध में आसानी से पच जाने वाला ओलिक अम्ल होता है । जबकि गाय के दूध में ब्यूटायरिक अम्ल अधिक मात्रा में होने के कारण इतना आसानी से नहीं पचता है ।

दूध में वसा छोटी-छोटी गोलिकाओं के रूप में होती है, जिनका औसत आकार 2.5 माइक्रॉन होता है । इन गोलिकाओं पर एक 0.02 माइक्रॉन मोटी झिल्ली होती है जिसे फैट ग्लोब्यूल झिल्ली कहते हैं । वसा की गोलिकाओं की झिल्ली में फॉस्फोलिपिड्स और प्रोटीन जटिल अवस्था में होते हैं । दूध के सीरम में थोड़ी सी मात्रा फॉस्फोलिपिड्स स्टेराल्स तथा स्वतंत्र वसीय अम्ल की होती है ।

विटामिन :

दूध में आहार की दृष्टि से आवश्यकतानुसार बहुत अच्छी मात्रा में विटामिन होते हैं, दूध में वसा में घुलित विटामिन A, D, E, तथा K वसा की तह में तथा पानी में घुलने वाले विटामिन B तथा C दूसरी तह में पाये जाते हैं । इसमे राइबोफ्लाविन अथवा विटामिन B_2 विटामिन A तथा थायोमिन अथवा विटामिन B_1 भी पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है । अत: दूध वयस्कों तथा बच्चों दोनों के लिए अति आवश्यक है । स्त्री के दूध में विटामिन B तथा B कॉम्लेक्स पर्याप्त मात्रा में होते हैं ।

लेकिन विटामिन C तथा D अधिक मात्रा में नहीं होने के कारण बच्चे की आवश्यकता की पूर्ति नहीं हो पाती। तुलनात्मक दृष्टि से स्त्री के दूध में प्रोटीन कम मात्रा में तथा कार्बोहाइड्रेट अधिक मात्रा में पाया जाता है। लेकिन मां के दूध में प्रोटीन की गुणता अच्छी होने के कारण बच्चे को आसानी से हजम हो जाता है। मां के दूध में पॉलीअनसेच्यूरेटेड वसा होती है, जो बालक के मस्तिष्क के विकास के लिए अति आवश्यक है। इसी कारण पशुओं की दूध की तुलना में मां के दूध से बच्चे के मस्तिष्क का विकास तेजी से होता है। दूध की चीनी लेक्टोस, ग्लेक्टोलिपिडस के बनाने में आवश्यक होती है तथा यह मस्तिष्क तथा रीढ़ की हड्डी के विकास के लिए बहुत आवश्यक है।

खनिज पदार्थ : दूध में लगभग 0.7 राख बचती है जिसका बड़ी सावधानी से विश्लेषण करने पर पता चलता है कि इसमें कुछ खनिज, जैसे- कैल्शियम, सोडियम, पोटेशियम फॉस्फेट्स अल्प मात्रा में, मैग्नेशियम सल्फेट तथा कार्बोनेट अति अल्प मात्रा में व लोहा, मोलिब्डेनम, कोबाल्ट, फ्लोरीन, ब्रोमीन, कॉपर, एल्यूमिनियम, बोरोन, जिंक, मैग्नीज, सिलिका आदि बहुत सूक्ष्म मात्रा में होते हैं। दूध में खनिजों की उपलब्धता तथा इनके आपस के सामंजस्य के द्वारा इसकी भौतिक अवस्था की जानकारी मिलती है। कुछ धातुएं जैसे लोहा तथा तांबा की उपस्थिति से दूध में गंध आ जाती है। इसी तरह कैल्शियम तथा फॉस्फोरस की उपस्थिति से दूध की पौष्टिक आहारता बढ़ जाती है। स्त्री तथा गाय के दूध में लोहा तथा तांबा की मात्रा कम होती है। अतः इनकी कमी को दूर करने के लिए छोटे बच्चों को अलग से थोड़ी-थोड़ी मात्रा इनको देना आवश्यक हो जाता है। स्त्री के दूध में गाय की दूध की तुलना में कैल्शियम की मात्रा एक-तिहाई होती है, लेकिन बच्चे के जठरांत क्षेत्र में इसकी अधिक मात्रा अवशोषित होती है।

एन्जाइम : एन्जाइम स्तन के ऊतकों में उपस्थित रहते हैं तथा दूध के साथ संयोग से स्राव करते रहते है। इससे दूध में विकार उत्पन्न हो जाता है।

कार्बोहाइड्रेट : दूध में थोड़ा सा मिठास लैक्टोस के कारण होता है। इसका मीठापन साधारण चीनी का 0.25% होता है। लैक्टोस दूध के पानी वाले भाग में घुला रहता है। स्त्री के दूध में लैक्टोस गाय की दूध की तुलना में अधिक मात्रा में होता है। लैक्टोस दूध से - दही, पनीर, मट्ठा आदि का बनाने में भी होता है। क्योंकि सूक्ष्म जीवों के द्वारा इसके किण्वन (फरमेनटेशन) से लैक्टिक अम्ल बनता है इसके अतिरिक्त लैक्टोस कुछ उपयोगी लेक्टिक अम्ल बनाने वाले जीवाणु के बनने तथा आंतों में बढ़ने में उपयोगी सिद्ध होता है।

प्रोटीन : स्त्री के दूध में अमीनों अम्ल का संघटन छोटे बच्चों के लिए उचित तथा आदर्श होता है। क्योंकि यह उनके शरीर के ऊतकों की संरचना में मदद करता है। स्त्री के दूध में कुल प्रोटीन की मात्रा गाय के दूध से कुछ कम होता है। परंतु यह बच्चे की आवश्यकता के लिए पर्याप्त होता है।

गंदे बर्तनों में एकत्रित करने तथा वितरण करते समय स्वच्छता का ध्यान न रखने से दूध मनुष्य के लिए हानिकारक सिद्ध हो सकता है। इससे विभिन्न प्रकार की बीमारियाँ फैल सकती हैं। दूध के द्वारा फैलने वाले रोगों टाइफाइड, पेराटाइफाइड, पेचिश तथा डायरिया, स्कारलेट बुखार, डिफ्थीरिया, हैजा, भोजन विषाक्तता एवं बच्चों में आंतों की बीमारी आदि प्रमुख हैं। अतः दूध में सूक्ष्मजीवियों को नष्ट करना बहुत आवश्यक है, क्योंकि इन्हीं से विभिन्न रोग फैलते हैं।

दूध एक विशेष शक्ति देने वाला तथा पौष्टिक दृष्टि से अत्यंत लाभकारी पेय है। इसें 'संपूर्ण-आहार' भी कहा गया है। हमारे देश में प्रति व्यक्ति दूध की कम से कम मात्रा 10 आउन्स होनी चाहिए। लेकिन यह 5 आउन्स से भी कम पायी जाती है।

डॉ. चंद्रभान सिंह
सह-प्रशिक्षक-दुग्ध प्रौद्योगिकी, कृषि विज्ञान केंद्र,
खोदावंदपुर, बेगुसराय, बिहार - 848 202

2. पर्यावरण संरक्षण : धार्मिक पेड़-पौधों का योगदान

पृथ्वी पर जब से मनुष्य की सभ्यता का जन्म हुआ है तभी से धर्म का अभ्युदय भी हुआ है। प्रारंभिक काल में मनुष्य जंगलों में रहता था, जंगली पेड़ों के पत्तों एवं छालों से अपना तन ढकता था एवं वृक्षों द्वारा उत्पादित कंद मूल एवं फलों का भक्षण करके या जंगली जानवरों को मारकर अपनी क्षुधा शांत करता था। जैसे-जैसे मानवीय सभ्यता का विकास प्रारंभ हुआ वैसे-वैसे उसने प्रकृति का दोहन करना शुरू कर दिया। अपने निजी स्वार्थों के लिए जंगलों को काटना तथा जानवरों का अंधाधुंध शिकार करना प्रारंभ कर दिया, जिससे प्रकृति का संतुलन डगमगाने लगा। इसीलिये हमारे पूर्वजों एवं महापुरुषों ने वृक्षों को धार्मिक महत्व से जोड़ा था ताकि उनकी रक्षा एवं संरक्षण किया जा सके। भारतीय दर्शन एवं साहित्य (धार्मिक) में वृक्षों की महत्ता को वर्णित किया गया है। वृक्षों को धार्मिक ग्रंथों में विशेषतया हिंदू धर्म में देवी-देवताओं का निवास स्थान बताया गया है। ऐसा करने का एक मात्र कारण मनुष्य में वृक्षों के प्रति आस्था एवं विश्वास का निर्माण करना था। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन काल से विचारशील, ज्ञानी मनुष्य प्रकृति प्रदत्त वृक्षों के संरक्षण के बारे में चिंतनशील दिखाई पड़ा है। परंतु बढ़ती आबादी, औद्योगीकरण एवं बढ़ता प्रदूषण ने प्रकृति एवं पर्यवरण संरक्षण के पूर्व नियमों को दर किनार कर दिया है।

भारतीय समाज में वृक्षों को एक विशेष स्थान दिया गया है। वृक्षों की महता एवं उनकी मानव के लिए उपयोगिता का वराह पुराण में भी वर्णन किया गया है। जिसमें कहा गया है कि यदि मनुष्य को स्वर्ग देखने की इच्छा हो तो उसे अधिक से अधिक वृक्षारोपण करना चाहिए तथा वृक्षों एवं प्रकृति की रक्षा करनी चाहिए। भारतीय धार्मिक अनुष्ठानों, यज्ञों एवं पारंपारिक रीति रिवाजों में वृक्षों की विशेष उपयोगिता है। कुछ पेड़ पौधों को तो कुछ विशेष देवी/देवताओं के नाम एवं उनके वास के आधार पर विशेष दर्जा एवं उनके काटने व उन्हें क्षति पहुंचाने पर विशेष प्रकार के पापों का उल्लेख मिलता है। नरसिंह पुराण में वृक्षों में ब्रह्म को वर्णित किया गया है। जबकि अथर्ववेद में पीपल के वृक्ष को कई देवों एवं देवियों की शरण स्थली कहा गया है। इसके अतिरिक्त भारतीय धार्मिक दर्शन में ज्यादातर महापुरुषों को ज्ञान प्राप्ति का स्थल वट वृक्ष या पीपल का वृक्ष बताया गया है। पुराणों में एक ऐसे भी वृक्ष का जिक्र किया गया है जो आपकी मनोकामना पूर्ण कर सकता है जिसे कल्पवृक्ष कहा जाता है। जंगलों में निवास करने वालों के यहां वृक्षों को बड़ा महत्व दिया जाता है। वे वन देवी एवं वन देवता के सिद्धांत को आज भी मान्यता देते हैं।

इस प्रकार हम देखते है कि वृक्षों की महिमा व उनकी उपयोगिता एवं देवी/देवताओं से घनिष्ठता के आधार पर मानव उनके संरक्षण एवं विकास के लिए मानसिक रूप से जुड़ा रहता है यह भी एक पर्यावरण संरक्षण का धार्मिक पहलू है। आज के इस दौर में व्यक्ति की आस्था ईश्वर में बहुत तेजी से बढ़ी है जिस कारण वह इन वृक्षों में ईश्वरों की शरण स्थली के प्रति भी आस्थावान है। तालिका-1 में विभिन्न वृक्षों एवं पेड़ पौधों पर देवी देवताओं के निवास स्थल का वर्णन प्रस्तुत है।

देवी देवताओं से संबंधित एवं अन्य पूजाओं के कारण मानव इन्हें जल्दी नहीं काटता है एवं इनके संवर्धन की सोचता है। इन वृक्षों में पीपल एवं बरगद कोइस लिए भी अधिक महत्व दिया गया है क्योंकि ये वातावरण को ठंडक रखने एवं वायु प्रदूषण को कम करने में योगदान देते हैं, जिसमें पीपल एक मात्र ऐसा पौधा है जो चौबीसों घंटे शुद्ध ऑक्सीजन देता रहता है और इसके पत्तों की विशेष बनावट एवं इनके हिलने डुलने से चारों तरफ का वातावरण शुद्ध होता है।

वृक्षों की भांति ही धार्मिक ग्रंथों में भी जीव जंतुओं का मानव एवं पर्यावरण से पारस्परिक संबंधों को दर्शाया गया है। यजुर्वेद में कई कहानियां ऐसी हैं जिसमें बताया गया है कि ऋषियों के आश्रम पर शेर व हिरन एक ही घाट पर पानी पीते थे। प्रकृति ने प्रत्येक जीव के लिए उसका आहार बनाया है और जीव जब अपने निजी स्वार्थ की पूर्ति प्रारंभ करता है तो प्रकृति का संतुलन बिगड़ता है। हिंदू धर्म में कुछ जीवों को भी विशेष दर्जा

तालिका-1

पवित्र पेड़ - पौधे, वृक्ष	संबंधित देवी, देवता एवं अन्य
आम	लक्ष्मी, गोवर्धन, बुद्ध, गंधर्व
आंवला	लक्ष्मी, कार्तिकेय, विष्णु, गंधर्व, वंश वृद्धि उपासना
अशोक	बुद्ध, इंद्र, विष्णु, गंधर्व, आदित्य, अप्सराएं
बरगद	ब्रह्म, इंद्र, विष्णु, महेश, कृष्ण, महेश, पंचानन, कुबेर, लक्ष्मी, यक्षणी
बेर	इतिकुमार, वंश वृद्धि उपासना
बेल	महेश, दुर्गा, लक्ष्मी, सूर्य
बांस	कृष्ण, वंश वृद्धि, उपासना, आदिवासी पूजा, यज्ञोपवीत, पूर्वज पूजा
इमली	आत्माएं एवं भूत प्रेत
कपूर	चंद्र देव
केला	लक्ष्मी, विष्णु, वंश वृद्धि उपासना
खेजडी	लक्ष्मी
खजूर	बुद्ध, यक्षिणी, भूत-प्रेत
कदम	कृष्ण, इंद्र, यक्षिणी, वंश वृद्धि उपासना
महुआ	वंश वृद्धि उपासना
नीम	शीतला, मंशा, वंश वृद्धि उपासना
पलाश	गंधर्व एवं अप्सराएं
पीपल	विष्णु, बुद्ध, कृष्ण, लक्ष्मी, ब्रह्मा, सूर्य, वनदुर्गा, अप्सरा प्रेत एवं आत्माएं
सॉल	वंश वृद्धि उपासना
सिज	मनसा एवं शीतला देवी
सीम	चंद्रमा
तुलसी	कृष्ण, राम, विष्णु, नारायण, श्री हरि जगन्नाथ, चंद्रमा, लक्ष्मी

दिया गया है एवं उन्हें देवी देवताओं की सवारी के रूप में, मूर्ति रूप में भी दर्शाया गया है जैसे भगवान विष्णु की सवारी गरूड़ को कहा जाता है । गणेश की चूहा, शंकर की नंदी (बैल), सरस्वती की हंस (श्वेत), इंद्र की ऐरावत (हाथी), लक्ष्मी की सवारी उल्लू एवं सर्प को शंकर भगवान का करीबी माना जाता है । इस प्रकार हम देखते हैं कि किस प्रकार जीवों को देवताओं से संबंधित करके उसके प्रति दया भाव एवं श्रद्धा का कार्य ज्ञानी महापुरुषों ने किया ।

भारतीय सभ्यता में प्राचीन काल से ही नैतिक सिद्धांतों की महत्ता पर दिया गया है, जिसमें पर्यावरण की सुरक्षा एवं संरक्षण का भी स्थान निहित है । पर्यावरण की धार्मिक आधार पर सुरक्षा, राजा से लेकर महाराजा एवं आम जनता तक ने की है क्योंकि उस समय धर्म के विरुद्ध कार्य करने पर अत्यंत कठोर दंड के प्रावधान की व्यवस्था की गयी थी ।

इस प्रकार हमारे पूर्वज वर्तमान की तुलना में पर्यावरण संरक्षण के प्रति ज्यादा जागरूक थे, कम से कम उन्होंने पर्यावरण संरक्षण के लिए विभिन्न विद्याओं का सृजन एवं पालन किया जैसे धार्मिक महत्व के आधार पर वृक्षों एवं जीव जंतुओं की सुरक्षा एवं संरक्षण । आज भी हम अपनी धार्मिक मान्यताओं को माने तो प्रकृति के

बिगड़े संतुलन को सुधारने की कोशिश कर सकते हैं। जरूरत है प्रत्येक व्यक्ति को अपने धार्मिक ग्रंथों एवं उसमें वर्णित वृक्षों के महत्व की जानकारी को ग्रहण कर एवं उनके संरक्षण एवं संरक्षा पर अमल करने की।

राजीव कुमार सिंह,
वनस्पति विज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद-211 022
उपेंद्र नाथ राय एवं **शरद कुमार श्रीवास्तव**
राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान,
लखनऊ-226 001

3. कृषि विज्ञान विषयक शब्दावली

भारतीय कृषि उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक पारंपारिक ही बनी रही। इस क्षेत्र में तब तक न के बराबर साहित्य था। किसानों के बीच केवल घाघ-भड्डरी की वर्षा, खाद तथा खेती संबंधित कहावतें एवं पशुओं के लक्षणों से संबंधित कहावतें मान्यता पाती रहीं किंतु कोई लिखित साहित्य न था। बीसवीं शताब्दी के आरंभ में विज्ञान की सर्वतोन्मुखी उन्नति के साथ ही कृषि विज्ञान के क्षेत्र में लोकोपयोगी साहित्य की आवश्यकता महसूस होने लगी और कृषि विषयक साहित्य लिखा जाने लगा। यद्यपि आरंभ में हिंदी में पारिभाषिक शब्दों के अभाव के कारण लेखकों को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा किंतु उनके द्वारा किये गये प्रयास निश्चित ही प्रशंसनीय हैं। यह उल्लेखनीय है कि 1900 तक हिंदी में केवल 11 पुस्तकें कृषि विज्ञान से संबंधित थीं जिसमें सबसे प्राचीन 1856 की है (कृषि कौमुदी-1856-लाल प्रतापसिंह, बंबई)। बीसवीं शताब्दी के आरंभ होते ही कृषि के क्षेत्र में जो क्रांति आयी उसके फलस्वरूप कृषि की तकनीकी पुस्तकें अनिवार्य लगने लगीं क्योंकि विभिन्न खोजों को किसानों तक पहुंचाने तथा कृषि प्रसार एवं प्रशिक्षण की दृष्टि से पुस्तकों का प्रणयन आवश्यक हो गया।

हमारे देश में प्रारंभ में कृषि पठन-पाठन का माध्यम अंग्रेजी ही रहा। अत: उच्च शिक्षा का लाभ खेतिहर किसानों तक दशकों तक नहीं पहुंच पाया। फलत: कृषि साहित्यकारों के समक्ष चुनौती थी कि वे हिंदी के माध्यम से जन-जन तक वैज्ञानिक उपलब्धियों को पहुंचायें।

भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली के निर्माण के उद्देश्य को लेकर भारत सरकार ने वर्ष 1950 में एक शब्दावली बोर्ड की स्थापना की और फिर 1961 में इसे वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग का रूप दे दिया गया। आयोग ने आरंभ से ही ऐसी शब्दावली के निर्माण पर बल दिया जो थोड़े संशोधन के बाद हमारी विभिन्न भारतीय भाषाओं की प्रगति के अनुरूप ढाली जा सके और अखिल भारतीय स्तर पर व्यवहार में लायी जा सके। वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग के तत्वावधान में उपलब्ध शब्दावली की समीक्षा करने के पश्चात् कुछ सिद्धांत निर्धारित किये गये जिनमें से प्रमुख इस प्रकार हैं -

1) अंतर्राष्ट्रीय शब्दों को यथासंभव उनके प्रचलित अंग्रेजी रूपों में ही अपनाना चाहिए और हिंदी व अन्य भारतीय भाषाओं की प्रकृति के अनुसार ही उनका लिप्यंतरण करना चाहिए। अंतर्राष्ट्रीय शब्दावली के अंतर्गत निम्नलिखित उदाहरण दिये जा सकते हैं-

अ) तत्त्वों और यौगिकों के नाम जैसे हाइड्रोजन, कार्बन, कार्बन डाइ ऑक्साइड आदि।

ब) तौल और माप की इकाइयां और भौतिक परिमाण की इकाइयां जैसे- एंपिअर-डाइन, कैलोरी आदि।

स) ऐसे शब्द जो व्यक्तियों के नाम पर बनाए गये हैं जैसे फॉरन्हाइट के नाम पर फॉरेन्हाइट तापक्रम, वोल्टा के नाम पर वोल्टामीटर और एंपिअर के नाम पर एंपिअर आदि।

द) वनस्पति विज्ञान, प्राणिविज्ञान, भू-विज्ञान आदि की द्विपदी नामावली।

2) हिंदी पर्यायों का चुनाव करते समय सरलता, अर्थ की परिशुद्धता और सुबोधता का विशेष ध्यान रखना चाहिए। सुधार विरोधी और विशुद्धवादी प्रवृत्तियों से बचना चाहिए।

3) सभी भारतीय भाषाओं के शब्दों में यथासंभव अधिकाधिक एकरूपता लाना ही इसका उद्देश्य होना

चाहिए और इसके लिए ऐसे शब्द अपनाने चाहिए जो अधिक से अधिक प्रादेशिक भाषाओं में प्रयुक्त होते हों और संस्कृत धातुओं पर आधारित हों ।

4) ऐसे शब्द जो सामान्य प्रयोग में वैज्ञानिक शब्दों के स्थान पर हमारी भाषाओं में प्रचलित हो गये हैं जैसे नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश, बायोफर्टिलाइजर इत्यादि । ये सब इसी रूप में व्यवहार किये जाने चाहिए ।

नयी शिक्षा नीति (1986) के व्यावहारिक कार्यक्रम के तहत विश्वविद्यालय स्तर पर शिक्षा माध्यम परिवर्तन के संदर्भ में शब्दावली आयोग को अतिरिक्त जिम्मेदारी सौंपी गयी थी और इस दिशा में निम्नलिखित चार कार्यक्रमों को निर्धारित किया गया है ।

अ) भारतीय भाषाओं में अब तक तैयार किये गये कार्य की तुलना में अब और बड़े पैमाने पर आधुनिक भारतीय भाषाओं में पाठ्य पुस्तक सामग्री, संदर्भ ग्रंथों, संपूरक साहित्य का निर्माण और प्रकाशन ।

ब) विश्वविद्यालयों के अध्यापकों का प्रशिक्षण तथा अभिविन्यास ।

स) अंग्रेजी से भारतीय भाषाओं में पाठ्य-पुस्तकों, संदर्भ ग्रंथों तथा संपूरक साहित्य का अनुवाद ।

द) इन शैक्षिक कार्यक्रमों का नियमित पुनरीक्षण तथा मॉनीटरन ।

यहां यह बात ध्यान में रखने की आवश्यकता है कि विज्ञान/कृषि विज्ञान के क्षेत्र में देश का बहुमुखी विकास तभी संभव है जब विज्ञान/कृषि विज्ञान के गूढ़ विषयों से संबंधित साहित्य सरल एवं सुबोध भाषा में उपलब्ध हों । शब्दों के चयन/निर्माण के समय इस बात को ध्यान में रखना आवश्यक है कि वे सुस्पष्ट तथा असंदिग्ध अर्थ रखते हों। कभी-कभी इस भूल की संभावना रहती है कि एक ही शब्द एकाधिक अर्थों में प्रयुक्त हों और संदर्भ से कौन-सा अर्थ उद्दिष्ट है, यह स्पष्ट न हो सके । काव्य में निष्कर्ष के अनेक रूप संभव हैं किंतु विज्ञान के निष्कर्ष की परिणति केवल एक ही होती है, जो वैज्ञानिक और पाठक के लिए समान होती है । विज्ञान की भाषा को यह शक्ति विज्ञान की शब्दावली प्रदान करती है ।

ध्यान रहे पारिभाषिक शब्दावली का एक घटक क्षेत्रीय स्तर पर प्रचलित शब्दावली भी है । ये वे शब्द हैं जिन्हें छोटे-छोटे कारीगर, किसान, मिस्त्री, आदि लोग अपने दैनंदिन व्यवहार में लाते हैं अथवा जो स्कूली पाठ्य पुस्तकों में व्यवहृत होते हैं । सामान्य जनता भी इन शब्दों को प्राय: प्रयोग में लाती है । हिंदी में लंबाई, चौड़ाई, ऊंचाई क्षेत्रफल आदि शब्द इसी कोटि के हैं । इन शब्दों के लिए अखिल भारतीय पर्याय निर्धारित नहीं किये जा सकते । अत: शब्दावली आयोग ने इसके लिए सभी भारतीय भाषाओं को अपने-अपने शब्दों के प्रयोग को जारी रखने की छूट दी है ।

देश में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात कृषि कार्यक्रमों को प्राथमिकता दी गयी और इस क्षेत्र में उच्च शिक्षा एवं शोध पर विशेष बल दिया गया । कृषि के क्षेत्र में काम करने वाले तथा शिक्षा संस्थाओं से संबंधित अनेक विद्वान हिंदी में कृषि-विज्ञान साहित्य सृजन करने का औचित्य समझते हुए अहर्निश सृजनकार्य में संलग्न हैं और कृषि विज्ञान की नवीनतम शाखाओं प्रशाखाओं से संबंधित मौलिक पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं, आयोग के द्वारा अनेक पारिभाषिक शब्दावलियां भी तैयार की जा चुकीं हैं और कई तैयार हो रही हैं । हिंदी में कृषि-विज्ञान साहित्य का सृजन करने वाले लेखकों को भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नयी दिल्ली, दि फर्टिलाइजर एसोसिएशन ऑफ इंडिया, विभिन्न राज्य सरकारें तथा अनेक गैर-सरकारी संगठनों द्वारा पुरस्कारों को देने की भी व्यवस्था है । इन योजनाओं से निश्चित ही कृषि-विज्ञान साहित्यकारों का उत्साहवर्धन हुआ है । निकट भविष्य में अनेक नवोदित लेखकों द्वारा कृषि-विज्ञान विषयक साहित्य सृजन करने की प्रबल आशाएं हैं ।

डॉ. दिनेश मणि, डी.एस-सी.
पूर्व संपादक, 'विज्ञान', विज्ञान परिषद प्रयाग,
महर्षि दयानंद मार्ग, इलाहाबाद -211 022

4. तेल, गैस और ऊर्जा का भविष्य

प्राकृतिक तेल एवं गैस के बारे में जानकारी मानव को हजारों वर्ष पहले से है । प्राचीनतम् प्रमाणों के अनुसार तेल और डामर अब से छह हजार वर्ष पहले फरात् नदी के तट से निकाले जाते थे ।

हमारे देश में तेल तथा गैस के सर्वेक्षण एवं उत्पादन का इतिहास बहुत पुराना नहीं है । अंग्रेजी शासन काल में ही इस उद्योग का विकास हुआ तथा स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इस उद्योग ने विकास के अनेक सोपान तय किये । उन्नीसवीं सदी के प्रारंभिक दिनों में जब ईंधन से चलने वाली मशीनों का विकास हुआ तब ईंधन के रूप में तेल के उपयोग के बारे में सोचा जाने लगा । उधर बढ़ती आबादी और फैलते शहरों में भी रोशनी की अधिकाधिक आवश्यकता महसूस की गयी । इस तरह बीसवीं शताब्दी के तीसरे और चौथे दशकों से प्राकृतिक तेल निकालने के काम ने तेजी पकड़ी- इसके लिए नयी -नयी मशीनों का आविष्कार हुआ । हालांकि इसे निकालने का काम धीमी गति से प्रारंभ हुआ पर पांचवें दशक के उत्तरार्ध में गैस उद्योग कां सघन विकास तीव्र गति से होने लगा ।

इक्कीसवीं सदी में भी तेल तथा गैस ही प्रमुख ईंधन होंगे - इसमें कोई शक की गुंजाइश नहीं है पर इसका प्रभुत्व कम समय तक ही रहेगा । इसके बाद इसके स्रोतों में क्रमश: कमी आने के कारण इनका दोहन इतना कम हो जायेगा कि कोयला फिर से एक प्रमुख ईंधन का रूप ले लेगा ।

ऐसा अनुमान लगाया गया है कि तेल एवं गैस के उत्पादन में धीरे-धीरे कमी होगी । यह धीमी प्रक्रिया इस बात पर निर्भर करेगी कि किन-किन क्षेत्रों में इनका उपयोग हो रहा है । ऐसा माना गया है कि सबसे पहले विद्युत उत्पादन और फिर विभिन्न इंजनों के लिए बड़े पैमाने पर ईंधन के रूप में इनका महत्व समाप्त होगा लेकिन रसायन उद्योगों में इसकी आवश्यकता बनी रहेगी। आज भी तेल और गैस के कुल उत्पादन का आठ प्रतिशत विभिन्न प्रकार की प्लास्टिक एवं रबड़ बनाने तथा सड़कें बनाने के लिए इस्तेमाल किया जाता है । भविष्य के बारे में अनुमान लगाया गया है कि 2020 तक रसायन उद्योगों के लिए हाइड्रोकार्बनों की आवश्यकता आज की आवश्यकता से दुगुनी हो जायेगी । पृथ्वी के जिन-जिन क्षेत्रों में तेल भंडार पाये जाने की संभावना है उनमें से 60 से 65 प्रतिशत क्षेत्रों का सर्वेक्षण किया जा चुका है । भू-तल पर ऐसे बहुत ही कम क्षेत्र हैं जिनका सर्वेक्षण अभी तक नहीं हुआ है । तेल के कुल संभावित भंडारों के बारे में अनुमान है कि वह चार से साढ़े चार अरब टन के आसपास है - हालांकि यह भी सच है कि अभी भी इस धरती में अरबों टन तेल और गैस के भंडार मौजूद हैं पर आज की पांच अरब टन वार्षिक उत्पादन दर अधिक समय तक हमारी आवश्यकता पूरी नहीं कर सकेगा ।

ऐसा अनुमान है कि अंटार्कटिका तथा उत्तरी समुद्रों में तैरते हिमप्लवों के नीचे छिपे ऐसे अनेक क्षेत्र हैं जहां तेल एवं गैस हैं - पर उपलब्ध आंकड़े बताते हैं कि यहां उतने बड़े भंडार नहीं हैं जितने बड़े मध्य-पूर्वी देशों में हैं ।

इसके अतिरिक्त तेल के और भी भंडार हो सकते हैं पर ये भू-तल से 4-5 किलोमीटर नीचे ही होंगे । अत: इनका सर्वेक्षण कार्य बहुत ही कठिन है । इसके अलावा भू-गर्भ में अनेक छोटे-छोटे भंडार छिपे हुए हैं जिनमें तेल एवं गैस की मात्रा केवल 20 प्रतिशत ही हैं । ऐसे भंडारों से तेल प्राप्त करना बहुत धीमी प्रक्रिया है तथा इसमें अधिक पूंजी लगती । दस लाख टन से कम मात्रा वाले भंडारों से प्राप्त प्रति टन तेल का मूल्य एक करोड़ टन मात्रा वाले भंडारों से प्राप्त तेल के मुकाबले 40 से 50 गुना अधिक होता है ।

भंडारों से तेल निकलने के बाद भी 50 से 70 प्रतिशत तेल भू-गर्भ में ही रह जाता है । यह तेल कुओं की दीवारों या ऐसे गढ्ढ़ों में रह जाता है जो कुओं से जुड़े नहीं होते । इसको निकालने के लिए अनेक प्रयास किये जाते रहे हैं पर अभी तक सफलता प्राप्त नहीं हो सकी है ।

पृथ्वी अपने गर्भ में और भी ज्वलनशील पदार्थ छिपाये हुए है-तेल और गैस की मात्रा से 10-15 गुना अधिक मात्रा में कोयला, रेजिन तथा बिटुमन हैं । कोयले के सबसे बड़े भंडार रूस, अमरीका, चीन और आस्ट्रेलिया में संकेंद्रित हैं । रेजिन अमरीका, ब्राजील, चीन तथा रूस में है जबकि बिटुमन के विशाल भंडार कनाडा एवं वेनेजुएला में हैं ।

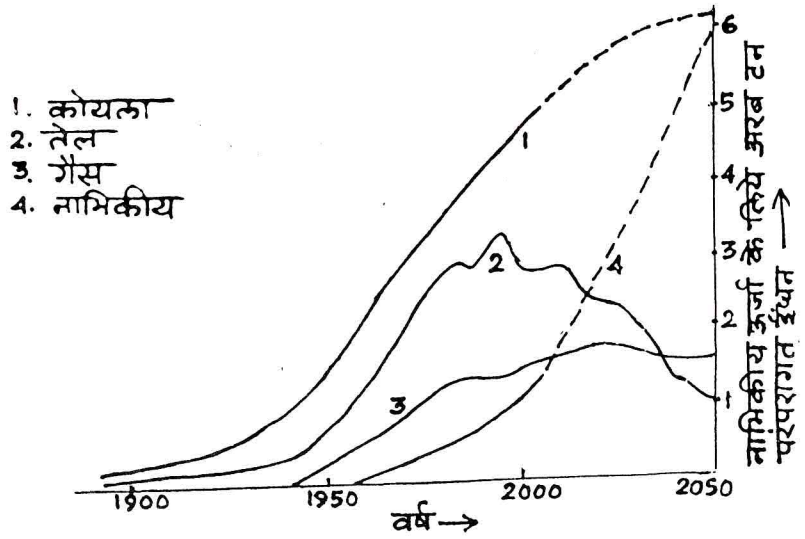

चित्र - क : ऊर्जा के स्रोतों का उत्पादन

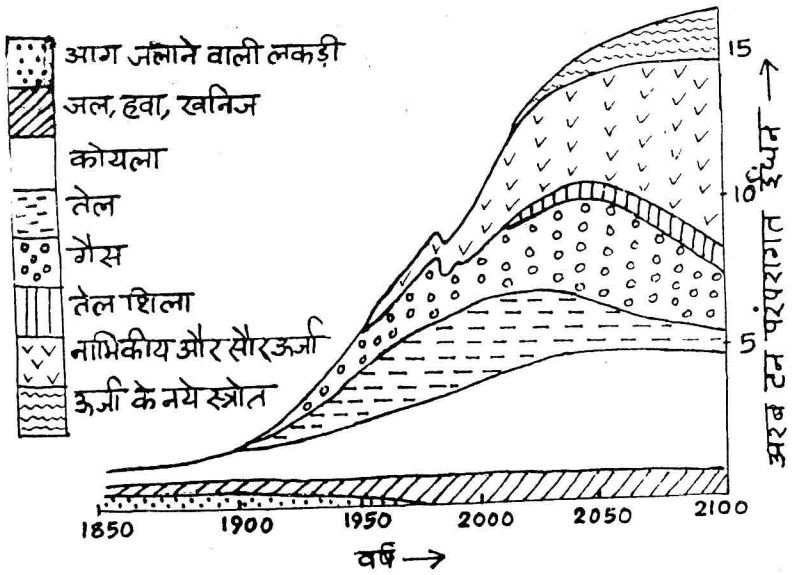

चित्र - ख : विश्व के ऊर्जा संतुलन में बदलाव

2001 तक पूरे संसार में लगभग 170 से 220 अरब टन कोयले का उत्पादन हुआ था जो विश्व के कुल भंडारों का केवल एक प्रतिशत भाग है। यदि 2010 तक कोयले की खपत् की दर यही रही तो तीसरी सहस्त्राब्दी के प्रारंभ तक कोयले की कुल खपत् इसके सभी भंडारों का केवल 1.5 प्रतिशत भाग होगी । तब विश्व को लगभग प्रतिवर्ष आठ अरब टन कोयला उपलब्ध होगा । कोयले के भंडारों के एक बड़े भाग से कोयला प्राप्त करना एक जटिल प्रक्रिया है क्योंकि कुल भंडारों का 40 प्रतिशत भाग दुर्गमप्राय भागों में स्थित है । भंडारों से कोयला निकालने के लिए आवश्यक खुली खदानों से इनके आसपास के क्षेत्र की प्रकृति नष्ट हो जाती है । इसके अतिरिक्त कोयला जलाने से राख और गंधक वायुमंडल में फैल जाते हैं । अत: कोयले की खपत का अनुमान लगाते समय पर्यावरण और आर्थिक पहलुओं को भी ध्यान में रखना आवश्यक है । इसी कारण यह अनुमान लगाना कठिन है कि भविष्य में कितना कोयला उपलब्ध होगा । चित्र-क में बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों से लेकर अब तक के विभिन्न ईंधनों के वार्षिक उत्पादन में होने वाले बदलाव दिखाये गये हैं । सभी अनुमानों के अनुसार 21 वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में तेल के उत्पादन में कमी आयेगी, तब अधिकतम वार्षिक उत्पादन तीन अरब टन से अधिक होगा यानि कुल भू-गर्भ भंडार का लगभग एक प्रतिशत ।

चित्र-ख में विश्व ऊर्जा संतुलन को घटता-बढ़ता दिखाया गया है । यदि विश्व की जनसंख्या 2030 तक स्थिर हो जाय तो बढ़ती हुई ऊर्जा की खपत में कमी आ जायेगी । नाभिकीय ऊर्जा का महत्व बहुत अधिक बढ़ जायेगा । ऐसा आकलन है कि 2050 तक ऊर्जा की कुल खपत की लगभग आधी मात्रा नाभिकीय ऊर्जा, सौर ऊर्जा और भू-गर्भ में छिपी ऊर्जा होगी । इन स्रोतों से प्राप्त होने वाली ऊर्जा की यह मात्रा, तेल और गैस से प्राप्त अधिकतम मात्रा से भी कहीं अधिक होगी ।

इन सबके बावजूद, विज्ञान एवं तकनीकी के क्षेत्र में द्रुत विकास के कारण ऊर्जा के अन्य अधिक सक्षम स्रोतों का भी दोहन हो सकेगा । आज पूरे विश्व की निगाहें सौर एवं पवन ऊर्जा के विकास पर लगी हुई हैं और यदि मानव को इस ऊर्जा के सरलतम उत्पादन में सफलता प्राप्त हो जाती है तो निश्चय ही पूरा विश्व समुदाय ऊर्जा के झंझटों से मुक्त हो जायेगा ।

डॉ. अवधेश शर्मा "वैज्ञानिक',
केंद्रीय ईंधन अनुसंधान संस्थान, बिलासपुर एकक्,
मुंगेली रोड, बिलासपुर (छ.ग.) - 495 001

5. रीढ़ की हड्डी के पक्षाघात से बचाव हेतु टीकों की खोज

इजराइल के चिकित्सा विज्ञानियों ने एक ऐसा टीका ईजाद किया है जिसके उपयोग से रीढ़ की हड्डी के चोट के शिकार मनुष्य को पूर्ण पक्षाघात से बचाया जा सकता है । चूहों पर किये गये इस टीके के प्रयोग के अच्छे परिणाम मिले हैं । प्राय: यह देखा जाता है कि रीढ़ की हड्डी (स्पाइनल कॉर्ड) के क्षतिग्रस्त होने पर इसका दुष्परिणाम हड्डी के आसपास की स्नायु कोशिकाओं और तंतुओं पर पड़ने लगता है, जिससे व्यक्ति धीरे-धीरे पूर्ण पक्षाघात (लकवा) का शिकार हो जाता है ।

इजराइल के वेजमान इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस में शोध कर रहे चिकित्सकों ने एक ऐसे टीके का ईजाद किया है जिसे लगाकर शरीर की पक्षाघात प्रतिरोधक क्षमता बढ़ायी जा सकती है । शोध के दौरान प्रयोगशाला में कुछ चूहों पर इस टीके के प्रयोग के अच्छे परिणाम निकले हैं । इन चूहों की रीढ़ की हड्डियां क्षति ग्रस्त थीं । टीका लगाने के बाद इन चूहों ने चलना फिरना शुरु कर दिया ।

शोध का नेतृत्व कर रहे न्यूरो-बायोलॉजिस्ट माइकल के अनुसार दर असल क्षतिग्रस्त रीढ़ की हड्डी के आसपास की स्नायु कोशिकाएं एवं तंतु कुछ समय पश्चात् प्रभावित होने लगते हैं । किंतु टीका लगाने के बाद ऐसा नहीं होता ।

चोट लगने की प्रारंभिक घटना से ज्यादा खतरनाक इसके कारण बाद में होने वाले दुष्प्रभाव हैं । रीढ़ की हड्डी

आहत होने के कई दिनों बाद तक अन्य कोशिकाओं पर दुष्प्रभाव पड़ने का ख़तरा होता है ।

चिकित्सा विशेषज्ञ उन स्नायु ऊतकों एवं तंतुओं को प्रभावित होने से बचाने का रास्ता ढूंढने में लगे हैं । अध्ययन के दौरान चूहों की रीढ़ की हड्डी को कुछ हद तक चोट पहुंचायी गयी, जिसके फलस्वरूप सामान्यतया उनके पीछे के अंगों में पक्षाघात की शिकायत हो सकती थी । शोध के दौरान कुछ चूहों को पेप्टाई या प्रोटीन युक्त टीका लगाया गया जबकि कुछ चूहों पर टीके का इस्तेमाल ही नहीं किया गया । पेप्टाई का प्रयोग इसलिए किया गया ताकि इससे शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि हो सके ।

चिकित्सा विशेषज्ञों के अनुसार जिन चूहों को टीके लगाये गये थे उनके पिछले अंगों में अप्रत्याशित गति आ गयी । जबकि बिना टीका वाले चूहों में पक्षाघात की शिकायत शत प्रतिशत महसूस की गयी । जिन चूहों पर टीके का इस्तेमाल हुआ उनमें से कुछ तो बिना किसी मदद के ही चल पाने में सक्षम रहे जबकि कुछ को चलने में मदद करनी पड़ी । ऐसा इसलिए हुआ कि टीके के कारण शरीर के अन्य हिस्सों में अभिघात का प्रसार नहीं हो सका । चिकित्सा विशेषज्ञों का कहना है कि मनुष्य के लिए इसका इस्तेमाल एक वर्ष के अंदर शुरु हो जायेगा । टीके की खोज से सेंट्रल नर्वस सिस्टम और मस्तिष्क घात (ब्रेन इंजुरी) के क्षेत्र में नये आयाम जुड़ेंगें ।

एक अन्य चिकित्सा विशेषज्ञ डॉ. डू डॉल्टन के अनुसार रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने के लिए पेप्टाई के इस्तेमाल के परिणाम स्वरूप अभिघात के बाद हानिकारक परिणामों में काफी कमी आयेगी । क्रिस्टोफर रीव पेरालिसिस फाउन्डेशन के अनुसार प्रत्येक वर्ष दुनियां में लाखों लोग रीढ़ की हड्डी की चोट से ग्रसित होते हैं । जिनमें से आधे लोग वाहन दुर्घटना के शिकार होते हैं । प्रत्येक वर्ष अरबों डॉलर इन शारीरिक रोगियों के इलाज तथा शारीरिक विकलांगता की स्थिति में सहायक उपकरण उपलब्ध कराने में खर्च होते हैं । वेजमान इंस्टीट्यूट के शोध कर्ताओं ने सबसे पहले पूर्ण पक्षाघात के बाद कुछ हद तक रीढ़ के स्नायुतंत्रों की मरम्मत करने के लिए रोग प्रतिरोधक उपचार विकसित किया था जिसका अभी परीक्षण चल रहा है ।

रंजना सिंह "वैज्ञानिक',
द्वारा हेमंत कुमार सिंह, कल्पना कॉलोनी,
तिख्रमपुर, बलिया -277 001

6. नारियल में मौजूद प्रोटीन और कोलेस्ट्रॉल

नारियल युक्त व्यंजनों को उनमें निहित उच्च वसा के कारण सामान्यत: शंका की दृष्टि से देखा जाता है । किंतु अब कुछ ऐसे वैज्ञानिक प्रमाण मिले हैं, जिससे पता चला है कि नारियल के अंदर ऐसे प्रोटीन भी विद्यमान हैं, जो स्वास्थ्य के लिए अत्यंत लाभकारी हैं ।

केरल के जीव-रसायनज्ञों द्वारा किये जा रहे अध्ययन के अनुसार नारियल में मौजूद प्रोटीन वास्तव में शरीर की धमनियों में अवरोध पैदा करने वाले वसाओं से रक्षा करता है । नारियल की गिरी अर्थात सफेद हिस्से में पाये जाने वाले ये प्रोटीन शरीर में संचित कोलेस्ट्रॉल की मात्रा को कम करते हैं । विभिन्न प्रयोगों से ज्ञात हुआ है कि इन प्रोटीनों का सेवन उच्च-कोलेस्ट्रॉल युक्त भोजन के दुष्प्रभाव को कम करता है ।

केरल विश्वविद्यालय के जीव-रसायन के प्रोफेसर थंकप्पन राजमोहन के अनुसार नारियल की गिरी में पाये जाने वाले प्रोटीन शरीर से कोलेस्ट्रॉल के उत्सर्जन की गति को बढ़ा देते हैं । वास्तव में नारियल के प्रोटीन में पाये जाने वाले ऐमीनो अम्लों में आर्जिनीन की मात्रा 25 प्रतिशत होती है, जो स्वास्थ्य के लिए लाभकारी है । पूर्व में किये गये अनेक अध्ययन इस बात के प्रमाण रहे हैं कि शरीर के कोलेस्ट्रॉल पर ऐमीनो अम्ल आर्जिनीन एवं एक अन्य ऐमीनो अम्ल लाइसीन का एक निश्चित प्रभाव पड़ता है । कुछ पशुओं के प्रोटीन जिनमें लाइसीन अधिक मात्रा में और आर्जिनीन कम मात्रा में पाया जाता है, वे कोलेस्ट्रॉल की मात्रा को बढ़ाने की ओर प्रवृत्त दिखाई देते हैं; किंतु पेड़-पौधों के वे प्रोटीन जिनमें आर्जिनीन अधिक मात्रा में और लाइसीन कम मात्रा में पाया जाता है, वे कोलेस्ट्रॉल को कम करने में सहायक होते हैं ।

नारियल के प्रोटीन में आर्जिनीन अधिक मात्रा में और लाइसीन कम मात्रा में पाया जाता है। नयी खोजों से इस बात का भी प्रमाण मिला है कि नारियल का प्रोटीन, मुक्त-मूलक अणुओं के स्तर को परिवर्तित कर उच्च कोलेस्ट्रॉल युक्त भोजन के दुष्प्रभावों से रक्षा करता है। मुक्त-मूलक जैविक रूप से सक्रिय अणु होते हैं, जो लाभदायक अथवा हानिकारक हो सकते हैं। कोलेस्ट्रॉल-निर्माण के संबंध में नाइट्रिक ऑक्साइड एक उत्तम मुक्त-मूलक है, जबकि सुपर ऑक्साइड एक खराब मुक्त-मूलक है। ये मुक्त-मूलक शरीर की नित्य प्रक्रिया के दौरान उत्पन्न होते हैं। नाइट्रिक ऑक्साइड रक्त-वाहिकाओं को फैलाता है, जो रक्त-दाब को सामान्य बनाये रखने में सहायक है और इससे उन कारणों से प्रतिरक्षा में भी मदद मिलती है, जिनसे धमनियां सख्त पड़ सकती हैं।

सुपर ऑक्साइड, नाइट्रिक ऑक्साइड का घोर शत्रु है। जब ये दोनों मूलक एक-दूसरे के समीप आते हैं, तब सुपर ऑक्साइड नाइट्रिक ऑक्साइड को नष्ट कर देता है। दोनों के मिलने से एक अन्य हानिकारक मूलक पेरोक्सिनाइट्राइट बनता है। अमरीका के एमोरी यूनिवर्सिटी के खोजकर्ता बताते हैं कि सुपर ऑक्साइड और नाइट्रिक ऑक्साइड की भिडंत में नाइट्रिक ऑक्साइड की क्षति होती है, जिससे रक्त-वाहिकाएं कड़ी पड़ जाती हैं और कभी-कभी तो वाहिकाओं के अवरुद्ध होने से प्राणघातक स्थितियां भी निर्मित हो जाती हैं।

नारियल के प्रोटीन में पाया जाने वाला ऐमीनो अम्ल आर्जिनीन शरीर में नाइट्रिक ऑक्साइड के संश्लेषण में अग्रणी भूमिका निभाता है। नाइट्रिक ऑक्साइड रक्त-वाहिकाओं की रक्षा के लिए एक शक्तिशाली एजेंट है। कोलेस्ट्रॉल के दुष्प्रभाव को कम करने में नारियल के प्रोटीन में पाये जाने वाले एंजाइम सुपर ऑक्साइड डिसमुटेस की उच्च क्रियाशीलता भी अपनी भूमिका निभाती है, क्योंकि इससे भी सुपर ऑक्साइड को नष्ट करने में सहायता मिलती है।

अत: नारियल से बने व्यंजनों को लेकर अब आप शक या भ्रम से दूर हो सकते हैं। इस संदर्भ में नयी खोजों का संदेश है कि नारियल का सेवन किया जाये।

बालकृष्ण काबरा "एतेश",
11, सूर्या अपार्टमेंट, रिंग रोड, राणाप्रताप नगर,
नागपुर (महाराष्ट्र) - 440 022.

7. कपास का पत्ती मरोड़ (लीफ कर्ल) विषाणु रोग व रोकथाम

कपास की फसल में पत्ती मरोड़ रोग सर्वप्रथम 1994 में उत्तरी भारत में विशेषकर राजस्थान, पंजाब व हरियाणा के क्षेत्रों में देखा गया। यह रोग अब एक नयी समस्या के रूप में उभर कर आया है। वैसे भी कपास के रोगों में लीफ़ कर्ल एक अत्यंत घातक रोग है। इस बीमारी का प्रकोप लगातार अधिक क्षेत्रों में फैलने का डर वैज्ञानिकों एवं कपास उत्पादकों के लिए चिंता का विषय बनता जा रहा है। दूसरी ओर चिंता का कारण यह है कि उत्तरी भारत की जितनी भी कपास की नयी किस्में हैं जैसे एफ. 505, एफ. 846, एफ 1054, एल.एच. 900, आर.एस.टी. 9, एच. एस. 6, एच. 1098 तथा एच. 974 इत्यादि इन सब पर यह रोग 40 से 90 प्रतिशत तक आंकित किया गया है।

इससे होने वाली हानि इस बात पर निर्भर करती है कि रोग फसल पर कब आया ? अगर बीजाई के सवा महीने के अंदर यह रोग आ जाये तो हानि काफी मात्रा में हो जाती है परंतु यदि यह रोग देर से आता है तो हानि कम होने की संभावना रहती है। अधिकतर हानि फूलों की मात्रा में कमी, टिंडों का आकार छोटा होना, पौंधों की बढ़वार रुक जाना, आदि की वजह से होता है।

इस रोग का प्रभाव सबसे पहले ऊपर की कोमल पत्तियों पर दिखाई देता है। पत्तों की नसें मोटी हो जाती हैं, पत्ता ज्यादा हरा दिखाई पड़ता है, पत्तियां ऊपर की तरफ मुड़ कर कप जैसी आकृति की हो जाती हैं।

इस कारण से इस रोग का नाम पत्ती मरोड़ (लीफ कर्ल) रोग पड़ा है। कहीं-कहीं पत्तियों के निचले हिस्से की नसों पर एक पत्ती के आकार की बढ़वार भी दिखाई पड़ती है जिसे ("इनेशन") कहा जाता है (चित्र-1)।

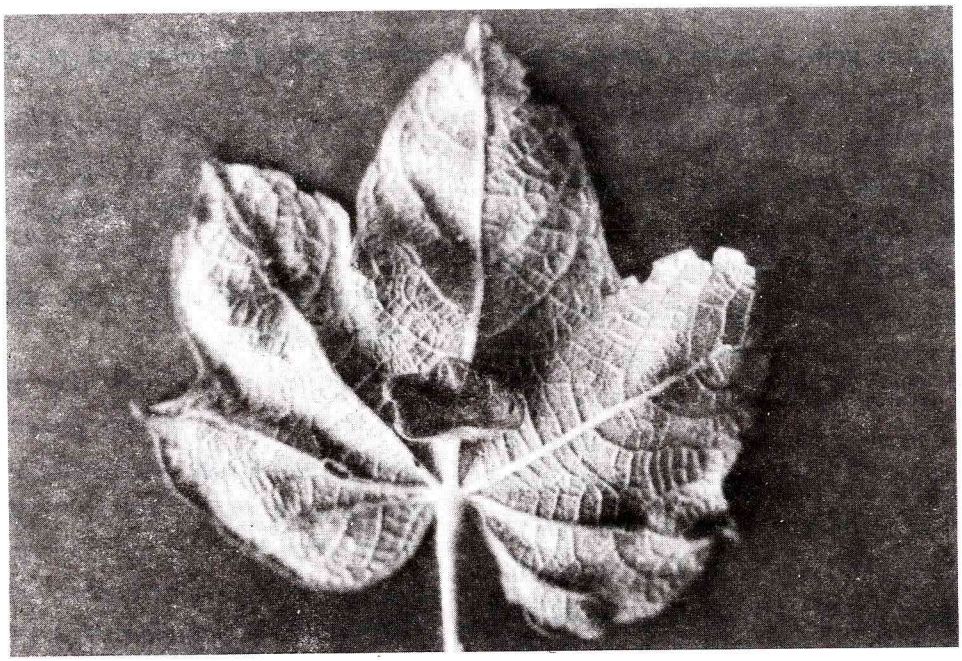

चित्र-1 : 'लीफ कर्ल' विषाणु से प्रभावित पत्ती व इनेशन

अधिक प्रकोप की अवस्था में लगभग सभी पत्तियों की नसें मोटी हो जाती हैं जिसके कारण वह ऊपर की ओर मुड़ जाती हैं तथा एक से दस के बीच "इनेशन" दिखाई पड़ती हैं। इसके फलस्वरूप पत्तियां अपना भोजन नहीं बना पातीं। अत: पौधों के विकास पर गहरा असर पड़ता है। ऐसे पौधे छोटे रह जाते हैं और फूल, कली व टिंडे कम मात्रा में या नहीं लगते हैं। अध्ययनों से पता चलता है कि यदि कपास के पौधों में छोटी अवस्था में यह रोग आ जाये तो पैदावार में 45% तक हानि हो सकती है। देसी कपास में यह रोग नहीं लगता।

यह रोग एक विषाणु द्वारा होता है जिसे कपास पत्ती मरोड़ जैमिनी विषाणु कहते हैं। यह रोग "जैमिनीवीरीडी" परिवार के "बिगोमोवाइरस" समूह से संबंधित है। जैमिनी वाइरस रोग का प्रकोप विश्व में है। यह विषाणु रोग न बीज द्वारा न ही मिट्टी या छूआछुत द्वारा फैलता है। बल्कि सफेद मक्खी इस रोग को फैलाने मे अति सहायक है सफेद मक्खी रोगग्रसित पौधे से रस चूसकर दूसरे स्वस्थ पौधों तक ले जाती है। यह मक्खी जून से लेकर नवंबर माह तक काफी मात्रा में पायी जाती है उसके तुरंत बाद कम हो जाती है। कपास के अतिरिक्त अन्य समय में विषाणु अनेक खरपतवारों, सब्जियों, फूल व फलदार पौधों पर रहते हैं। इसके उपरांत कपास की छोटी अवस्था में ही इन्हीं पर संरक्षण पा रही सफेद मक्खियों द्वारा रोग का प्रकोप कपास पर होता है।

रोकथाम के उपाय

- जिस जगह यह रोग ज्यादा हो वहां पर अमरीकी कपास के बदले देसी कपास ही बोई जाय।
- अगर अमरीकी कपास ही बोनी हो तो रोग अवरोध किस्में आर. ए. 875, एल.आर.ए. 5166, नी. के. 151, एल. एच. एच. 144 ही बोयें।
- कपास की बिजाई 15 अप्रैल के बाद करें तथा बिजाई के बाद फसल की लगातार निगरानी करें व रोग ग्रसित इक्के-दुक्के पौधों को उसी समय उखाड़ कर जला दें।
- खेतों के आसपास की जगहें खरपतवार रहित होनी चाहिए।

- नींबू प्रजाति के बागों के आसपास कपास की बीजाई न करें । यदि बागों में कपास बोनी हो तो देसी कपास ही बोयें ।
- भिंडी पर भी यह रोग आता है इसलिए जहां पर यह रोग लगता है वहां पर भिंडी की काश्त न करें । इसके अलावा फूलों वाले पौधे जैसे गुलरवेड़ा, होलीहाक, चाइनारोज़ की भी ऐसे क्षेत्रों मे काश्त न करें ।
- कीटनाशक डाइमैथोएट (700-1000 मि. लि. प्रति हैक्टर) या ऑक्सीडेमेटान मिथाइल या अचूक (400-500 मि. लि. प्रति हैक्टर) के हिसाब से 12-18 दिन के अंतराल पर छिड़काव करने से सफेद मक्खी पर नियंत्रण पाया जा सकता है ।

डॉ. प्रदीप शर्मा
पादप रोग विभाग,
चौधरी चरण सिंह हरयाणा कृषि विश्वविद्यालय,
हिसार - 125 004.

मौत के मुंह से "बाल-बाल बचे"

(पृष्ठ -36 का शेष भाग)

चीखों से आसमान गूंज उठा । किंतु उड़ाके प्रसन्न थे । गोता ख़िलाकार उन्होंने अपने वायुयान को 958 उड़ान के मार्ग से हटा दिया था । 958 उड़ान ऊपर से निकल गयी और 907 उसके नीचे से ।

958 अपनी यात्रा पर आगे बढ़ता गया किंतु 907 उड़ान का बुरा हाल था । 411 कुल यात्रियों में से 344 ने अपने सीट बेल्ट नहीं खोले थे, वे प्राय: सभी सुरक्षित बच गये । मात्र 53 यात्रियों को मामूली चोटें आयीं । शेष 67 यात्रियों में से, जो सीट बेल्ट नहीं बांधे थे, 35 घायल हो गये । 7 यात्री और उड़ान दल के 2 सदस्य गंभीर रूप से घायल हो गये । चाय, नाश्ता देनेवाली गाड़ी फर्श से उठकर, छत से टकरा गयी । इस परिस्थिति में आगे यात्रा कैसे होती ? उड़ाके ख़ुश थे कि उन्होंने एक भीषण वायु दुर्घटना को बचा लिया । उन्होंने वापिस हनेडा वायुअड्डे पर उतरने की अनुमति मांगी ।

थोड़ी ही देर बाद उड़ान 907 का बोइंग 747 हनेडा वायुअड्डे पर उतरा, उस समय वायुअड्डा सुरक्षा, सहायता का अड्डा बना हुआ था । 43 एंबुलेंस गाड़ियां और 100 से भी ज्यादा अन्य गाड़ियां, इस उड़ान के उतरने का इंतजार कर रही थीं ।

907 उड़ान का उड़ाका यदि गोता नहीं लगाता तो संभवतया वायु में वायुयानों के टकराने वाली यह एक भीषण वायुयान दुर्घटना होती किंतु जब जांच की गयी तो पता चला कि नियंत्रक के प्रारंभिक गलत आदेश, 907 के उड़ाकों का "टक्कर रोकनेवाली प्रणाली" और नियंत्रक के बाद के आदेशों की अवहेलना, इस बाल-बाल बची दुर्घटना के असली जिम्मेवार थे । मारने और बचाने वाला, इसी कारण कहा जाता है कि एक ही होता है ।

❑❑❑

विज्ञान समाचार

भा. प. अ. केंद्र से :

1. नाभिकीय ऊर्जा कार्यक्रम संबंधी जानकारी जनता को :

भा.प.अ. केंद्र के अपशिष्ट प्रबंधन प्रभाग (WMD) व स्वास्थ्य भौतिकी प्रभाग (HPD) ने दो दिवसीय कार्यशाला, "उत्तरी भारत में नाभिकीय शक्ति का अर्थशास्त्र और खतरे" (इकोनोमिक्स एंड रिस्कस ऑफ न्यूक्लियर पावर इन नार्थ इंडिया) में भाग लिया था । इसका आयोजन नेशनल यूनियन ऑफ जर्नेलिज्म एंड कम्यूनिकेशन व परमाणु ऊर्जा विभाग के पब्लिक अवेयरनेस प्रभाग ने संयुक्त रूप से किया था । यह कार्यशाला 20-21 अप्रैल, 2002 को इंस्टीट्यूट ऑफ इलेक्ट्रॉनिक्स एंड टेलिकॉम इंजीनियर्स, चंडीगढ़ में हुई थी । हिंदी, पंजाबी, अंग्रेजी भाषाओं के समाचार पत्रों व इलेक्ट्रॉनिकी माध्यम के संपादक / पत्रकारों तथा गैर सरकारी संस्थाओं (एन.जी.ओ.) के प्रतिनिधियों (लगभग पचास व्यक्तियों) ने इस कार्यशाला में भाग लिया था ।

टेक्निकल सर्विसेज सेक्शन, अपशिष्ट प्रबंधन प्रभाग के अध्यक्ष, श्री सुरेंद्र कुमार ने श्रोताओं को ऊर्जा उत्पादन के दौरान जनित रेडियो सक्रिय अपशिष्ट के प्रबंधन, समस्थानिकों के उपयोग, भुक्त शेष ईंधन के पुनःउपचार आदि के बारे में बतलाया । न्यूनतम अपशिष्ट उत्पादन, उसके पृथ्थकीकरण, उपचार व निपटान की मूल अवधारणाओं को समझाया । उत्पादित अपशिष्ट मात्रा को न्यूनतम करने में, उपयोगी पदार्थों जैसे सीज़ियम (Cs), प्लूटोनियम (Pu), यूरेनियम (U), अमरेशियम (Am) आदि की पुनःप्राप्ति पर जोर दिया । उन्होंने ठोसीय अपशिष्टों के भंडारण / निपटान की विचार धारा को, सहज सरल भाषा में प्रतिनिधियों को समझाया तथा प्रतिनिधियों की रेडियो सक्रिय अपशिष्ट से जुड़ी आशंकाओं को, नाभिकीय उद्योग द्वारा प्रयुक्त तकनीकी उपायों तथा कदमों का विवरण देकर, दूर किया ।

श्री आर. एस. शर्मा (अध्यक्ष स्वास्थ्य भौतिकी प्रभाग भापअ केंद्र) ने "नाभिकीय शक्ति संयंत्रों में विकिरण सुरक्षा-पहलू" विषय पर अपनी वार्ता में भारतीय कार्यक्रम में अपनाये गये सुरक्षा तथा नियामक (रेग्यूलेटरी) पहलुओं के विशेष महत्व की आवश्यकता पर प्रकाश डाला । उन्होंने यह भी बताया कि स्वास्थ्य भौतिकी प्रभाग, व्यवसायिक विकिरण उद्भासन के नियंत्रण, पर्यावरण के मॉनीटरन व निगरानी का कार्य तथा नाभिकीय संयंत्रों के निकट रहने वालों के जीवन पर रेडियो सक्रियता संबंधी प्रभावों का मूल्यांकन करने के साथ साथ न्यूक्लियर पावर कार्पोरेशन ऑफ इंडिया लि. को विकिरण सुरक्षा के विभिन्न पहलुओं पर परामर्श भी देता है ।

श्री एस. के. मल्होत्रा (अध्यक्ष, पब्लिक अवेयरनेस प्रोग्राम, परमाणु ऊर्जा विभाग) ने "भारत में नाभिकीय ऊर्जा कार्यक्रम" पर तथा श्री ए.वी.घारे व श्री ए. के. नेमा (NPCIL) ने "नाभिकीय शक्ति कार्यक्रम-न्यूक्लीय शक्ति का अर्थशास्त्र" पर अपनी वार्ताएं दीं ।

पत्रकारों ने भारतीय नाभिकीय शक्ति कार्यक्रम पर अपने विचार रखे । इस कार्यशाला ने पत्रकारों व अन्य सहभागियों को नाभिकीय ऊर्जा संबंधी उनकी आशंकाओं को दूर करने का अवसर दिया ।

2. बड़े दानों वाली मूंगफली TPG41 - का विमोचन :

2 अगस्त 2002 को भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की वेरा इटील आइडेंटीफिकेसन कमेटी ने बड़े दानों वाली, मूंगफली TPG41 (जिसका पूर्व नाम TG41 था) को पूरे भारत में सिंचित रबी / ग्रीष्म के लिए विमोचित किया है ।

इस किस्म का विकास TG-28A और TG-22 संकरित कर 1992 में किया गया था । ट्रांबे में किये गये TG-41 के मूल्यांकन प्रयोगों (1996-97) के दौरान इसने अधिक फली उत्पाद व बड़े दानों की ज्यादा औसत मात्रा दी थी। अखिल भारतीय कोऑर्डिनेटेड वेराइटील ट्रायलों (1998-2001) में TG-41 का औसत फली उत्पाद 2088 किग्रा./ हेक्टर (सर्वश्रेष्ठ चेक किस्म की तुलना में क्रमशः 14.2% और 23.2% ज्यादा) प्राप्त हुआ था । इसके 100 दानों का औसत भार 65 ग्राम था, जिनमें परिपक्व बीजों का अनुपात अधिक था ।

TG-41 किस्म 120 दिनों में परिपक्व हो जाती है, ताजों नये बीजों का प्रसुप्ति (डारमेंसी) काल 25 दिनों का है। यह एक महत्वपूर्व विशेष गुण है। यदि खेत में फसल कटाई हेतु तैयार हो और बेमौसमी बरसात हो जाये तो इस गुण के कारण बीजों का स्व-स्थान (इन सिटु) अंकुरण नहीं होता है। TG-41 के दानों में कैलोरी मान, प्रोटीन और ओलीइक अम्ल (तैलीय पदार्थ) की मात्रा बेहतर है।

TG-41 को दिया गया नाम TG-41 भा. प. अ. केंद्र और महात्मा फुले कृषि विद्यापीठ, राहुरी के सहयोग-कार्यक्रम को इंगित करता है।

3. राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय में रेडियो अनुरेखक प्रयोगशाला स्थापित

2 अगस्त 2002 को बीकानेर में स्थापित रेडियो ट्रेसर प्रयोगशाला का उद्घाटन डॉ. ए. एम. सैम्यूल ने (जो उस समय बायो-मेडिकल विभाग, भा.प.अ. केंद्र की अध्यक्षा थीं), प्रो. सी. पी. एस. यादव (उपकुलपति, राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय) की उपस्थिति में किया। 13 जुलाई 2000 को राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय और भा.प.अ. केंद्र तथा बी आर एन एस (बोर्ड ऑफ रिसर्च एंड न्यूक्लियर स्टडीज) में एक समझौता किया गया था। इसके अनुसार राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय बीकानेर में एक रेडियो अनुरेखक प्रयोगशाला और बहुस्थलीय परीक्षण केंद्र की स्थापना करनी थी।

इसका उद्देश्य कृषि विज्ञान के क्षेत्रों में रेडियो समस्थानिकों व विकिरण के उपयोग में सहयोगी अनुसंधान कार्यक्रमों को विकसित व संचालित करना है। इस प्रयोगशाला में अति हिमीकरण यंत्र, प्रस्फुरण गणित्र (काउंटर), गामा गणित्र, धूम कक्ष, विकिरण मॉनीटर आदि यंत्र व रेडियो-भेषज रखे जायेंगे। रा. कृ. वि. एवं भा. प. अ. केंद्र द्वारा परस्पर तय किये गये प्रोजक्टों के अंतर्गत कार्यक्रम से जुड़ी समस्याओं के मूल और अनुप्रयोग संबंधी जानकारी प्राप्त होने की आशा है। विशेषतः पशु विज्ञान में रेडियो भेषजों के अनुप्रयोगों और भा. प. अ. केंद्र में विकसित सरसों तथा मूंगफलियों की विभिन्न किस्मों की राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों में परीक्षण/मूल्यांकन हेतु यह संबंध लाभप्रद होगा।

4. प्रधानमंत्री द्वारा अपशिष्ट अचलीकरण संयंत्र का उद्घाटन :

भारत के प्रधान मंत्री, श्री अटलबिहारी बाजपेयी ने, 31 अक्तूबर 2002 को अपशिष्ट अचलीकरण संयंत्र का औपचारिक उद्घाटन किया। लगभग 50 करोड़ रु की लागत से निर्मित यह वेस्ट इममोबिलाइजेशन प्लांट (WIP), ट्रांबे, देश का प्रथम संयुक्त संयंत्र हैं जो सभी श्रेणी के द्रवीय रेडियो सक्रिय अपशिष्टों, जैसे निम्न, मध्यम व उच्च (LLW, ILW व HLW) को उपचारित कर सकता है। इस संयंत्र ने प्लूटोनियम संयंत्र, ट्रांबे से प्राप्त उच्च द्रवीय अपशिष्ट को कांचित (विट्रिफाई) करना प्रारंभ कर दिया है।

कांचन सुविधा में सांद्रण हेतु एक वाष्पित्र, 1050^0 सें. पर कांचन के लिए तीन प्रेरण तापित धात्वीय गालक और निर्गत गैस को स्वच्छ करने हेतु विस्तृत प्रणाली का समावेश है। उच्च विकिरण क्षेत्र को ध्यान में रखते हुए सभी प्रक्रियाएं 1.5 मीटर मोटी कांक्रीट दिवारों से बने तप्त कक्षों में की जाती है। इन कक्षों में सुदूर हस्तांतरण एवं बारीकी से देखने के लिए आवश्यक यंत्र/उपकरण लगे हैं।

संयंत्र में, निम्नश्रेणी के रेडियो सक्रिय द्रवीय अपशिष्ट को प्रतिलोम प्रसारण प्रक्रिया (रिवर्स ऑसमोसिस प्रोसेस) द्वारा उपचारित व सांद्रण को सिमेंटीकरण करने की सुविधा है। क्षारीय मध्यश्रेणी के रेडियो सक्रिय द्रवीय अपशिष्ट को उपचारित करने हेतु आयन विनिमय (एक्सचेंज) सुविधा का नियोजन है। इस सुविधा में ^{137}Cs की किलोक्यूरी मात्रा में पुनःप्राप्ति का प्रावधान होगा, जिसका उपयोग विकिरण स्रोत के रूप में होता है। उच्च श्रेणी अपशिष्ट उपचारन क्षमता को बढ़ाने हेतु इसमें जूल तापित सिरेमिक गालक जोड़ने की भी योजना है।

प्रस्तुति : **डॉ. कैलाश चंद्र भल्ला**
बी-12, गीतांजली, प्लॉट-52,
सेक्टर - 17, वाशी, नयी मुंबइ 400 706

अन्य समाचार

1. प्रतिकृतीय गो-कोशिकाओं के द्वारा सूक्ष्म वृक्क का सृजन :

संयुक्त राज्य अमरीका में स्थित एक जीवप्रौद्योगिकी प्रतिष्ठान में शोधरत वैज्ञानिकों ने स्तंभ कोशिकाओं (Stem Cells) के प्रायोगिक अध्ययनों के दौरान क्लोनीकृत गाय की स्तंभ कोशिकाओं से मानव वृक्क सदृश छोटे अंगों के विकास में सफलता प्राप्त कर लेने का दावा किया है जो वास्तविक वृक्क के कुछ महत्वपूर्ण कार्यों का निष्पादन करने में सक्षम होता है । मैसाच्यूसेट्स के वोरसेस्टर में स्थित एडवांस सैल टेक्नॉलाजी सेंटर के अनुसार क्लोनिंग विधा के द्वारा मानव अंगों का विकास प्रतिस्थापन के हेतु संभव है और इनमें पूर्ण आनुवंशिकीय समतुल्यता भी हो सकती है जो प्राप्तकर्ता के लिए स्वीकार्यता उत्पन्न करती है । डॉ. राबर्ट पी. लैन्ज़ा ने यह भी स्पष्ट किया है कि इस प्रकार से विकसित सूक्ष्म वृक्कों के द्वारा स्वच्छ मूत्र की उत्पत्ति एवं उत्सर्जन संपन्न होता है । नवंबर, 2001 में यह प्रतिष्ठान गहन विवादग्रस्त हो गया था जब इसके द्वारा प्रथम मानव क्लोनीय भ्रूणों के विकास का दावा पेश किया गया । यद्यपि सभी क्लोनित भ्रूण आठ कोशिकीय अवस्था के पश्चात् जीवित नहीं रह सके ।

प्रतिष्ठान ने यह घोषणा की कि मानव शिशुओं की उत्पत्ति उसका अंतिम लक्ष्य नहीं है तथापि इनका उपयोग चिकित्सा कार्यों में किया जा सकता है । इन क्लोनीकृत मानव भ्रूणों से स्तंभ कोशिकाओं का संग्रहण करके किसी वांछित ऊतक या कोशिकासमूह का विकास करना संभव है । एक नवीनतम प्रयोग में वैज्ञानिकों ने मानव क्लोनिंग पद्धति के माध्यम से भ्रूण विकास में सफलता प्राप्त की है । इसमें एक गाय के डिंब के DNA को दूसरी गाय के कान की पास वाली एक त्वक् कोशिका के DNA में प्रतिस्थापित किया गया । डॉ. लैन्ज़ा ने यह स्पष्ट किया है कि शोधकर्ताओं को इस विधि का सम्यक् ज्ञान न होने के कारण इस प्रयोग में गाय के भ्रूणों का पूर्व गर्भाधारित शिशु (foetus) कि स्थिति तक विकास नहीं होने दिया गया । नवजात वृक्क कोशिकाओं का अधिग्रहण इन भ्रूणीय गौ-शावकों से किया गया तथा इन कोशिकाओं को लगभग 2" लम्बी स्पंज सदृश पट्टिका पर स्थापित किया गया । कोशिका वृद्धि के परिणाम स्वरूप एक सूक्ष्म वृक्क तुल्य अंग की उत्पत्ति प्रदर्शित हुई । जब इसे उस गाय के शरीर में प्रतिस्थापित किया गया जिसके कान की त्वक् कोशिका का अधिग्रहण किया गया था तो उसके शरीर से अपद्रव्यों को इस कृत्रिम वृक्क ने छानकर मूत्र के द्वारा उत्सर्जित करने में आशातीत भूमिका अदा की । अक्लोनीकृत भ्रूणों से अधिगृहीत कोशिकाओं से उत्पन्न किये गये इसी प्रकार के वृक्क असफल सिद्ध हो चुके हैं । गाय के प्रतिरक्षा तंत्र के द्वारा भी इन्हें अस्वीकार कर दिया जाता है ।

जॉन्स हॉपकिन्स वि. वि. में कार्यरत एक अन्य स्तंभ कोशिका विद डॉ. जॉन गेरहॉर्ट ने यह विचार व्यक्त किया है कि इन प्रयोगों ने भ्रूणीय स्तंभ कोशिका अनुसंधान क्षेत्र में एक क्रांतिकारी योगदान दिया है । गाय के भ्रूणों या गर्भस्थ शावकों के माध्यम से संपन्न किये गये प्रयोगों के विषय में यह शंका भी प्रकट की जा रही है कि इस प्रकार वैज्ञानिक ऐसे क्लोनों का विकास भी कर रहे हैं जो शरीर के सभी अंगों की संपत्ति का स्रोत सिद्ध हो सकते हैं । प्रो. गेरहॉर्ट के अनुसार मानव संदर्भ में ऐसे प्रयोगों की स्वीकार्यता पूर्ण रुप से संदिग्ध है ।

2. अनुकृति विडाल (Copycat)-प्रथम प्रतिकृतीय विडाल शिशु :

वैज्ञानिकों ने भेड़, मूषक, शूकर, बकरी एवं अनेक चतुष्पदी प्राणियों की प्रतिकृतियों का विकास करने में पहले ही सफलता प्राप्त कर ली है परंतु विश्व के प्रथम प्रतिकृतीय विडाल शावक की उत्पत्ति का समाचर जब "नेचर" के अंक में गत 14.6.2001 को प्रकाशित हुआ तो समस्त विश्व में हजारों व्यक्तियों के दो सर्वाधिक पारंपारिक पालतू प्राणियों में से एक विडाल की प्रथम अनुकृति विडाल के Cc नाम से पुकारा गया और इसका जन्म अमरीका के टैक्सास स्थित A & M विश्वविद्यालय में हुआ । 22 दिसंबर 2000 में जन्मे इस विडाल शावक की विचित्रता यह है कि यह अपनी जननी की सर्वथा अनुरुप अनुकृति नहीं है । इसके त्वक् रोम स्तर (Fur) में भिन्नता स्पष्ट प्रदर्शित है । बहुवर्णीय त्वक् रोमस्तरधारी प्राणियों में वर्ण योजना का निर्धारण मुख्य रूप से

गर्भावस्था की परिस्थितियों पर ही आधारित होता है, वंशाणुओं पर नहीं। अनुकृतियां वस्तुतः अपने माता-पिता की आनुवंशिक प्रतिकृति होने पर भी सर्वथा अनुरूप नहीं होती हैं। ए. एंड एम. विश्वविद्यालय के शोधकर्ताओं ने श्वान-प्रतिकृति के सृजन हेतु भी अनेक प्रयास किये हैं पर उन्हें अपेक्षित सफलता नहीं प्राप्त हो सकी है। व्यापारिक दृष्टिकोण से विडाल के अनुकृतीकरण पर प्रतिबंध है तथा अनुकृतीकरण विधा को अधिक सक्षम तथा परिष्कृत करने का प्रयास हो रहा है। उद्देश्य है Cc की उत्तरजीविता में वृद्धि करना। Cc का अनुकृतिकरण क्यूमुलस (Cumules) कोशिकाओं के द्वारा किया गया है। ये कोशिकाएं स्तनधारी प्राणियों के अंडों के डिंबमोचन (Ovulation) के पूर्व चारों ओर से उन्हें आच्छादित किये हुये रहती हैं। एक इसी प्रकार के पूर्व प्रयास के दौरान टेक्सॉस शोधदल को मातृ-विडाल की मुख्यवर्ती कोशिकाओं से अनुकृतिकरण में सफलता प्राप्त नहीं हुई।

Cc को जन्म देने वाले भ्रूण को एक भाड़े की मां के गर्भ में ही स्थापित किया गया था तथा पूर्ण गर्भावस्था अंतराल में उसकी देखभाल की गयी थे। प्रयोग में कुल 87 भ्रूणों को आठ मादा विडालों में प्रतिस्थापित किया गया परंतु इनमें से एक गर्भधारण निष्फल हो गया तथा मात्र एक से जीवित, स्वस्थ अनुकृति प्राप्त हो सकी।

3. मर्कट बीजांड के द्वारा स्तंभ कोशिकाओं की उत्पत्ति :

संप्रति जैवप्रौद्योगिकी क्षेत्र के शोधकर्मी क्लोनीकृत ऊतकों के सृजन की अन्यान्य विधाओं की खोज में लीन हैं ताकि चिकित्सा क्षेत्र में इसका निर्बाध उपयोग हो सके। इस दिशा में एक अभिनव प्रयोग के माध्यम से शुक्राणु के प्रयोग किये बिना ही मर्कट भ्रूण की उत्पत्ति में सफलता प्राप्त की जा चुकी है। इन कोशिकाओं से हृदय, मस्तिष्क तथा अन्य विशिष्ट कोशिकाओं का सृजन करना संभव हो सकता है। वोरसेस्टर अमरीका स्थित एडवांस सेल टेक्नॉलॉजी (ACT) के अध्यक्ष डॉ. माइकेल वेस्ट के अनुसार उनके शोध संवर्ग ने कतिपय रसायनों का प्रयोगकर मर्कट बीजांड के भ्रूण विकास में सफलता प्राप्त की है। इस पद्दति को पार्थेनोजेसिस (Partheno genesis) कहा जाता है। इस पद्धति के द्वारा विकसित भ्रूण से स्तंभ कोशिकाएं ग्रहण करके विभिन्न ऊतकों का निर्माण किया गया। ये कोशिकाएं ग्रहण करके विभिन्न ऊतकों का निर्माण किया गया। ये कोशिकाएं पूर्ण वयस्क होती हैं और इनका उपयोग चिकित्सा हेतु किया जाता है।

ACT के द्वारा गत नवंबर (2001) में यह दावा किया गया था कि उसने मानव भ्रूण की प्रतिकृति का विकास कर लिया है और वह 6- कोशिकीय अवस्था तक ही पहुंच सका था। यद्यपि नवीन अध्ययन में मर्कट बीजांडों का ही प्रयोग किया गया है तथापि मानव भ्रूणीय स्तंभ कोशिकाओं का निर्माण भी पार्थेनोजेनेसिस द्वारा संभव है। कुछ अन्य विशेषज्ञों के अनुसार इस तकनीक के माध्यम से केवल प्रजनन सक्षम आयुवर्गीय महिलाओं को ही लाभ पहुंच सकता है। डॉ. वेस्ट का विचार है कि इस विधा से निर्मित भ्रूणों के द्वारा नैतिक और सामाजिक अपवादों का निराकरण संभव हो सकेगा। मर्कट कोशिकाओं के द्वारा संपन्न अध्ययन वस्तुतः पार्थेनोजेनेसिस की ही अनुकृति है जो स्वाभाविक रूप से प्रकृति में घटित होता रहता है फिर भी यह सामान्य क्रिया नहीं होती है।

शोध अध्ययन के दौरान डॉ. वेस्ट ने लगभग 77 मर्कट बीजाडों को ठीक उसी प्रकार से प्रचारित किया जैसा कि शुक्राणु निषेचन के समय प्रभाव होता है। इनमें से मात्र 28 बीजाडों का विकास भ्रूणावस्था तक हो सका। केवल 4 ही पूर्वस्थापनावस्था (ब्लास्टोसिस्ट) तक ही पहुंच सके। इस बिंदु पर शोधकर्ताओं ने भ्रूणीय स्तंभ कोशिकाओं के एक निर्दिष्ट समूह का अधिग्रहण किया।

प्रस्तुति : **विजया तिवारी**
विज्ञान स्तंभ लेखिका, भारतीय लाख अनुसंधान संस्थान,
नामकुम-रांची (झारखंड) - 834 010.

4. बायो-मेडिकल व्यर्थ पदार्थों द्वारा हिपेटाइटिस एवं पीलिया आदि संक्रमणकारी रोगों का फैलाव:

अनेक कानूनों, अभियानों एवं दावों के बावजूद भी बायो-मेडिकल व्यर्थ पदार्थों से भारतीय नागरिकों के स्वास्थ्य एवं जीवन के लिए उत्तरोत्तर खतरा बढ़ता ही जा रहा है। एक अध्ययन के अनुसार वर्ष 2000 तक देश में औसतन 200 बिस्तरों की क्षमता वाले 1300 चिकित्सालय थे। इनमें से लगभग 15 प्रतिशत चिकित्सालयों के ही

पास बायो-मेडिकल व्यर्थ पदार्थों को नष्ट करने के लिए इन्सीनरेशन सुविधा उपलब्ध थी। इन चिकित्सालयों के अतिरिक्त देश में 10000 से भी अधिक प्राइवेट चिकित्सालय एवं नर्सिंग होम हैं जिनके पास बायो-मेडिकल व्यर्थ पदार्थों को ठिकाने लगाने के लिए कोई सुरक्षित या वैज्ञानिक सुविधा मौजूद नहीं है। वर्तमान समय में नित्य-प्रति गली-गली और घर-घर में प्राइवेट चिकित्सालयों एवं नर्सिंग होम के खुलते जाने से यह स्थिति और भी भयावह होती जा रही है, क्योंकि ये सभी चिकित्सालय और नर्सिंग होम बायो-मेडिकल व्यर्थ पदार्थों को यूं ही खुले में कूड़े के ढेर पर फेंक देते हैं। इस विषय में किये गये एक अध्ययन के अनुसार प्रत्येक चिकित्सालय/नर्सिंग होम से कम-से-कम दो किलो 'बायो-मेडिकल व्यर्थ पदार्थ प्रति बैड प्रतिदिन की दर से निकलता है। इस प्रकार देश में प्रतिवर्ष लगभग तीन लाख टन बायो-मेडिकल व्यर्थ पदार्थ निकलता है और इसकी 15 प्रतिशत मात्रा खतरनाक है। जनसंख्या एवं चिकित्सा सुविधाओं के बढ़ने के साथ-साथ बायो-मेडिकल व्यर्थ पदार्थों में प्रतिवर्ष आठ प्रतिशत की दर से बढ़ोत्तरी होते जाने की संभावना है।'

चिकित्सालयों एवं नर्सिंग होम द्वारा निकलने वाले इन संक्रामक एवं खतरनाक बायो-मेडिकल व्यर्थ पदार्थों में अस्थियां, प्लेसेंटा, शल्य चिकित्सा द्वारा निकाले गये शारीरिक अंगों के भाग, संक्रमित सुइयां तथा रक्त, मवाद, थूक, मल-मूत्र आदि को लाये जाने वाले पालीथीन पाउच एवं शीशियां आदि होती हैं जिन्हें सीधे कूड़े के ढ़ेर में फेंक दिया जाता है। इन संक्रामक एवं व्यर्थ पदार्थों को कूड़े के साथ उठाकर शहर के बाहर या भीतर खाली पड़ी जमीनों, पानी के तालाबों, गड्ढों में फेंक दिया जाता हैं जहां से इनके द्वारा संक्रमण फैलता रहता है। इन संक्रमणकारी व्यर्थ बायोमेडिकल पदार्थों से रोगाणु हवा में मुक्त रुप से फैलते रहते है तथा जल के साथ रिस-रिस कर भूमिगत जल में पहुंचते रहते हैं। वर्षा-ऋतु में बायो-मेडिकल व्यर्थ पदार्थों युक्त इन कूड़ों पर घास-फूस उग जाती है जिसे पशु चरते हैं जिसके फलस्वरुप संक्रमणकारी रोगाणु पशु के शरीर में पहुंच कर उनसे उत्पादित होने वाले मांस एवं दूध तक में पहुंच जाते हैं। बायो-मेडिकल व्यर्थ पदार्थों को वैज्ञानिक विधियों से निस्तारित नहीं किये जाने के कारण नागरिकों के स्वास्थ्य एवं जीवन को निरंतर खतरा बढ़ता ही जा रहा है।

5. स्वास्थ्य के लिए अत्यंत ही घातक है पान मसाला :

आजकल हमें हर गली, हर चौराहा, हर नुक्कड़ पर, शहर तो शहर सुदूर देहातों तक में और कुछ मिले या न मिले, विभिन्न प्रकार के पान मसाले जरूर मिल जायेंगे। यूं तो स्वास्थ्य विशेषज्ञों, चिकित्सकों एवं वैज्ञानिकों द्वारा पान मसालों को पहले ही स्वास्थ्य के लिए हानिकारक घोषित किया जा चुका है परंतु इनकी खपत दिनो-दिन बढ़ती ही जा रही है। हाल ही में विभिन्न स्वास्थ्य वैज्ञानिकों द्वारा किये गये अनेक शोधों से ऐसे अनेक तथ्य सामने आये हैं जिनसे ज्ञात होता है कि पान मसाला (सादा एवं तंबाकू युक्त दोनों) पहले से ज्ञात जानकारियों से भी कई गुणा अधिक खतरनाक है। सभी प्रकार के पान मसालों एवं गुटखों के उपभोग से कैंसर होने के साथ-साथ शरीर के अन्य अंगों को भी क्षति पहुंचती हैं।

बाजार में प्रचलित पान मसालों में पारंपारिक सामग्रियों के अतिरिक्त अनेक विषैली एवं कारसीनोजनिक धातुएं जैसे लेड, कैडमियम एवं निकिल आदि भी पाये गये हैं। यहां तक कि कुछ किस्म के पान-मसालों में लकड़ी के छोटे-छोटे टुकड़े भी पाये गये है। पान-मसालों को दीर्घ अवधि तक उपभोग करने वाले व्यक्तियों में मसाला जन्य रोगों के लक्षणों के लिए ज्यादा दिन तक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती है। इस विषय में किये गये विभिन्न शोधों के अनुसार पान-मसाला जन्य मुख कैंसर के लक्षण पान मसाला खाने की आदत डालने के दो से तीन वर्षों के भीतर प्रकट होने लगते हैं। चूहों पर किये गये एक शोध के अनुसार पान-मसाला चूहों में गुणसूत्रों पर भी अपना दुष्प्रभाव डालता है।

कुछ छोटे देशों को छोड़कर विश्वस्तर पर भारत में मुख कैंसर के रोगियों की संख्या सर्वाधिक है। इसका बहुत बड़ा कारण पान-मसाला, गुटखा, मैनपुरी तंबाकू एवं धूम्रपान का सेवन करना है। सरकार एवं स्वैच्छिक संगठनों द्वारा इन पदार्थों के उपभोग से उत्पन्न होने वाले

खतरों के लिए जागरुकता अभियान चलाये जाने की नितांत आवश्यकता है और हमें स्वयं भी इन पदार्थों के उपभोग से बचना चाहिए ।

6. मधुमेह की सस्ती एवं सर्वसुलभ प्रत्यौषध- सत्तू :

प्राचीन भारतीय खान-पान की परंपरा में सत्तू को सदियों से एक विशिष्ट स्थान रहा है । भारतीय समाज के ग्रामीण अंचलों में सत्तू की महत्ता आज भी अपना स्थान बनाये है । ग्रीष्म ऋतु प्रारंभ होते ही सत्तू का उपभोग शुरु हो जाता है । ग्रामीण क्षेत्रों में सत्तू एक 'फास्ट फूड' की भांति हर कहीं सुलभता से उपलब्ध रहता है और इसका कहीं भी, कभी भी उपभोग किया जा सकता है । उत्तर प्रदेश में तो 'सत्तू संक्राति' का एक विशेष पर्व भी मनाया जाता है और इस दिन सभी लोग सत्तू अवश्य खाते हैं । हाल में की गयी शोधों से यह तथ्य सामने आये हैं कि मधुमेह रोगियों के लिए सत्तू एक सस्ता एवं सर्वसुलभ प्रत्यौषध है । सत्तू के नित्य उपभोग से रक्त में कोलेस्ट्रॉल स्तर सामांन्य बना रहता है और मधुमेह को नियंत्रित रखा जा सकता है ।

7. करी खाइये कैंसर से आंतों को बचाइये :

ब्रिटेन में किये गये एक शोध के अनुसार करी को अपने दैनिक भोजन में शामिल करके हम अपनी आंतों में होने वाले कैंसर से बच सकते है । भारतीय खान-पान की परंपरा में नित्य-प्रति के भोजन में करीयुक्त भोजन का विशेष स्थान है । करी बनाने में उपयोग में आने वाले पदार्थों में हल्दी एक प्रमुख पदार्थ है । शोध से यह तथ्य सामने आये हैं कि हल्दी में मौजूद अनेक रसायन कैंसर उत्पन्न करने वाले रसायन- "साइक्लो ऑक्सीजिनेज-2" को निर्धारित कर देते हैं जिससे आंतों में कैंसर होने की संभावनाएं नगण्य हो जाती है । ज्ञात हो कि ब्रिटेन में प्रतिवर्ष लगभग 17,000 व्यक्तियों की आंतों के कैंसर से मृत्यु हो जाती है ।

8. कीटनाशी रसायनों द्वारा पार्किन्सन रोग होने का खतरा :

इमोरी विश्वविद्यालय अटलांटा, जॉर्जिया के वैज्ञानिकों के एक दल द्वारा किये गये शोधकार्यों से यह तथ्य सामने आये हैं कि उद्यानों में कीटनाशी के रुप में प्रयोग किये जा रहे पौध आधारित एक कार्बनिक कीटनाशी रसायन से पार्किन्सन रोग उत्पन्न होने का खतरा बना रहता है । मनुष्यों एवं पर्यावरण के लिए वृहद स्तर तक सुरक्षित समझे जाने वाले 'रोटिनान' नामक इस कीटनाशक रसायन को प्रयोगशालायीय चूहों में जब अंत:शिरीय रुप से अंत:क्षिप्त किया गया तो उनमें पर्किन्सन रोग के विशिष्ट लक्षण उत्पन्न हो गये और उनके मस्तिष्क को क्षति पहुंची । इन लक्षणों के अतिरिक्त इन चूहों में गुच्छेदार प्रोटीन जिन्हें 'लेवी बॉडी' कहा जाता है, का निर्माण प्रारंभ हो गया ।

विश्व की संपूर्ण जनसंख्या की एक प्रतिशत जनसंख्या में पैंसठ या उससे अधिक उम्र के दौरान उत्पन्न होने वाला पर्किन्सन रोग एक अपक्षयकारी रोग के रूप में जाना जाता है । इस अपक्षयकारी रोग से प्रभावित होने वाली विश्व की प्रमुखतम हस्तियों में पोप जान पाल द्वितीय, विश्वप्रसिद्ध मुक्केबाज-मोहम्मद अली, मशहूर सिने-स्टार माइकेल जे फॉक्स एवं पूर्व अमरीकी राष्ट्रपति निक्सन प्रमुखतम है ।

प्रस्तुति : डॉ. राज किशोर
डॉ. राम मनोहर लोहिया, अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद

9. दौरे के लिए उत्तरदायी वंशाणु का पता चला:

जापानी वैज्ञानिकों ने एक ऐसे मानव वंशाणु का विवरण ज्ञात करने में सफलता प्राप्त की है जो एक विशेष प्रकार के दौरे का मूल कारण होता है । इसके ज्ञान से आघातीय संकटग्रस्त व्यक्तियों को पूर्व सूचना प्रदान करने का मार्ग प्रशस्त होने की संभावना है । कतिपय मामलों में यह प्राणरक्षक भी सिद्ध हो सकता है । यह वंशाणु SAH (Suba-arachnoid Haemorrhage) से संबंधित होता है । इस आशय का एक प्रतिवेदन जापानी पत्रिका "असाही" तथा "मायन्ची शिम्बून" नामक समाचार पत्र में प्रकाशित हुआ है । सामान्यतया इस प्रकार का रक्तस्रावी आघात 40-50 वर्ष की आयु वाले व्यक्तियों में ही प्रदर्शित होने की संभावनाएं होती हैं जो उन्हें निश्चेतनावस्था में शीघ्र पहुंचा सकता है । प्रारंभ में

तीव्र शिरोशूलके लक्षण भी प्रकट हो सकते हैं । प्रारंभ में तीव्र शिरोशूल के लक्षण भी प्रकट हो सकते हैं । उपचार उपलब्ध न होने पर यह प्राणघाती भी हो सकता है । यह महत्वपूर्ण शोध टोकियो विश्वविद्यालय के चिकित्सा विज्ञान संस्थान के शोधशास्त्री इत्सुरो इनोयु तथा महिला चिकित्सा विभाग के प्रो. हिदेतोशी कासुमा के नेतृत्व में कार्यरत वैज्ञानिकों ने संपादित किया है । 175 SAH ग्रस्त रोगियों के वंशाणुवर्ती अध्ययन और वंशाणुक्रम आधारित सूचनाओं के गहन अध्ययन के पश्चात् उपरिवर्णित सफलता अर्जित की जा सकी है ।

चिकित्सकों को उपरोक्त शोध परिणाम से यह बताने में सरलता होगी कि अमुक व्यक्ति असाधारण रुप से धमनियों के विस्तारण के संकट से घिरा है अथवा नहीं । इसके कारण धमनियों में रक्त के थक्के जम सकते हैं जो इनके विस्फारण का भी जनक हो सकता है ।

10. मूषकीय प्रोटीन से गर्भनिरोधक का निर्माण संभव :

इटली के विख्यात प्रजननशास्त्री तथा उनके सहयोगियों तथा चीन के शोधकर्ताओं ने यह दावा किया है कि उन्होंने चूहों में पाये जाने वाले एक ऐसे वंशाणु का पता लगाया है जो यौगिकीय निर्माण करने में सक्षम होता है । ऐसे यौगिक यौन प्रसारी व्याधियों के विरुद्ध रक्षात्मक सिद्ध हुये है ? अन्यान्य सूक्ष्मजीवों (Microbes) जिनमें HIV भी शामिल है के प्रति इनके शक्तिशाली प्रभाव जो इन्हें नष्ट करने में सक्षम होता है, के विषय में शोधकार्य प्रगति पर है और यह संभावना व्यक्त की गयी है कि इस प्रभाव के कारण इनमें गर्भनिरोधी प्रभाव उत्पन्न करने की भी क्षमता हो सकती है । शोध की सफलता के परिणाम स्वरुप सूक्ष्मजीवनाशी (Microbicide) का उत्पादन संभव हो सकेगा जो गर्भनिरोधक भी होगा । शंघाई स्थित चीनी वैज्ञानिक अकादमी और हांगकांग स्थित चीन विश्वविद्यालय के शोधकर्ता वर्ग ने चूहों के प्रजननांगों का अध्ययन किया है । इनमें प्रजननगति तीव्रतम होने का प्रमाण है ।

वैज्ञानिकों ने विशेषरुप से अधिवृषण (Epididymis) पर अपना शोध केंद्रित किया जो वृषण (Testes) में अवस्थित शुक्राणु उत्पादन अंग होता है । डॉ. पेंगली के अनुसार यह यौन रोग प्रसारी जीवाणुओं के भंडारण का कार्य भी करता है । इस अंग में विद्यमान एक विशिष्ट वंशाणु "Binlb" की पहचान की जा चुकी है जो प्रोटीन के पेप्टाइड (Peptide) अवयव को नियंत्रित करने में भी सक्षम होता है ।

11. सबसे छोटी बिल्ली :

विश्व की सबसे छोटी बिल्ली (Rusty Spotted Cat) केनर की लंबाई (सिर + शरीर) मात्र 406-457 मिलीमीटर ही होती है जबकि इनकी पूंछ 228-254 मि. मी. तक लंबी देखी गयी है । मादा बिल्ली कुछ कम लंबाई युक्त होती हैं । इनके पूर्वज दो प्रकार के होने के प्रमाण मिले हैं - डिंक्टिस (Dinctis) बिल्ली और होलोफोनियस (Holophoneus) या Sabretoothed Cats. डिंक्टिस (Dinctis) आजकल पायी जाने वाली बिल्लियों के सदृश ही होती थीं । इनके कैनाइन दंत बड़े, पैने होते थे । एक अन्य प्रजाति भी उस समय होती थी - स्मिलोडोन-(Smilodon) जिसके दांत मुख से बाहर दिखाई पड़ते थे ।

सामान्यतया विडालों में कुल अस्थियों की संख्या मनुष्य से अधिक ही होती है । मनुष्य शरीर में 206 और विडाल में 236 अस्थियां होती हैं । सभी स्तनधारियों में सर्वाधिक तेज पंजे इसी वर्ग के सदस्यों में होते हैं जो प्रसरणशील होते हैं । फर का प्रत्येक बाल एक मांसपेशी तंतु से नियंत्रित होता है अत: सभी बिल्लियां फर के बालों को भयाक्रांत होने या क्रोधावस्था में सीधा खड़ा करने में समर्थ होती हैं ।

12. मलेरिया वंशाणु कूट का पता चला :

वैज्ञानिकों ने मलेरिया के परजीवी के आनुवंशिक कूट के विषय में जानकारी प्राप्त करने में सफलता अर्जित कर ली है । इस महत्वपूर्ण उपलब्धि के माध्यम से मलेरिया के घातक प्रकोप से मुक्ति पाने की पूर्ण संभावना है । मलेरिया की मृत्यू दर शिशुओं के संदर्भ में प्रति 20 मिनट में एक आंकी गयी है । इस शोध दल में कई अमरीकी तथा ब्रिटिश वैज्ञानिक शामिल हैं । इन लोगों

(शेष भाग कृपया पृष्ठ -58 पर देखें)

चाँद-सितारों की दुनिया में खो गयीं कल्पना चावला

एशियाई तथा भारतीय मूल की सबसे पहली अंतरिक्षयात्री कल्पना चावला छह अन्य सहयोगियों के संग अमरीका अंतरिक्ष शटल कोलंबिया से अपने दूसरे अंतरिक्ष मिशन पर 16 जनवरी 2003 के दिन पूरे जोश के संग निकल पड़ी थीं। क़रीब 2 सप्ताह उन्होंने भारहीनता की स्थितियों में ईंधन, ज्वाला, धुयें और अग्निशामक जल की प्रकृति तथा अंतरिक्षीय आचरणों पर तथा धातु-मिश्रणों के निर्माण तथा गुणों से जुड़े कई-कई भौतिक रासायनिक प्रयोग पूरी-पूरी सफलता से पूरे किये। फिर इस अनमोल अनुभव तथा डाटा के संग पृथ्वी की ओर लौट रही कल्पना 1 फरवरी 2003 के दिन सहसा ही इतिहास बन गयीं जब पृथ्वी से महज 16 मिनट अथवा 63 किलोमीटर के फ़ासले पर किन्हीं अज्ञात कारणों से उनका यान टुकड़े-टुकड़े होकर बिखर गया। अंतरिक्ष यात्रियों के इस क्रूर तथा असामयिक निधन ने विश्व के करोड़ों सहृदय लोगों को स्तब्ध कर दिया। कल्पना चावला की मौत के समाचार ने संपूर्ण अमरीका, एशिया और ख़ास तौर पर भारत को अथाह दुख में डुबो दिया। हरयाणा और इसके शहर करनाल के लोगों की आंखें आँसुओं से भर गयी क्योंकि कल्पना का जन्म 1 जुलाई 1962 के दिन इसी प्रदेश और कस्बे में हुआ था जोकि आज कल्पना की अद्‌भुत क्षमताओं के कारण अंतरिक्ष के नक्शे पर विशेष पहचान हासिल कर चुके हैं। विश्व भर के मीडिया ने इस मौके पर कल्पना को अमरीका की विशिष्ट नागरिक और भारत की ऐसी लाड़ली बेटी कह कर सम्मानित किया, जिसकी क्षतिपूर्ति नामुमकिन होगी। "वैज्ञानिक" के अक्तूबर-दिसंबर 1997 के अंक में इनका परिचय (पृष्ठ-51) भी प्रकाशित किया गया था।

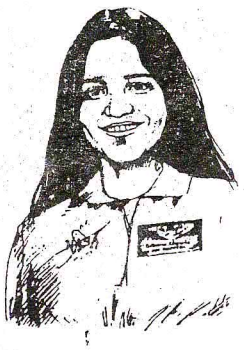

कल्पना चावला ने अपने पहले अमरीकी अंतरिक्ष मिशन STS-87 के तहत वर्ष 1997 में इसी यान में पृथ्वी के 275 किलोमीटर ऊपर धरती के मनुष्यों की बेहतरी के लिए कई बहुमूल्य वैज्ञानिक प्रयोग किये थे। भारहीनता की स्थितियों में ठोस एवं द्रवीय पदार्थों के आचरण की जानकारी जुटाने के साथ-साथ उन्होंने "एग्नक्लोज़्ड लैमिनर फ्लेम्स" और धातु-धातु अन्योन्यक्रियाओं संबंधी प्रयोगों को सफल अंजाम दिया था। अपनी अद्‌भुत वैज्ञानिक दक्षता और अथक परिश्रम के कारण ही कल्पना नासा के अंतरिक्ष मिशन के लिए दोबारा चुन ली गयी जोकि एक अंतरिक्षयात्री के लिए सचमुच बहुत बड़ा सम्मान है। कल्पना का समूचा जीवन वैज्ञानिक खोजों के प्रति समर्पित रहा। इस सिलसिले में सत्य और विज्ञान के प्रति निष्ठा के कारण उनकी तुलना डॉ. होमी भाभा से की जा सकती है जोकि स्वयं भी विज्ञान की अथक सेवा कर अल्प-आयु में एक विमान दुर्घटना में स्वर्ग सिधार गये थे।

कल्पना चावला को विश्व के अनेक स्थानों पर, अनेक लोगों द्वारा अत्यंत भावभीनी श्रद्धांजलि दी

➡

है ।

विद्यार्थी-वर्ग को कल्पना चावला ने एक 'रोल मॉडेल' के रूप में बरसों से प्रेरित किया है । भारतीय विद्यार्थियों, ख़ासकर लड़कियों के लिए वे वाकई आदर्श थीं । कल्पना की मृत्यू से अनेकानेक विद्यार्थी ऐसे हताश हैं मानो उनकी मार्गदर्शक बड़ी बहन अचानक खो गयी हो, हालांकि इनमें ज़्यादातर का संपर्क कल्पना से कभी नहीं रहा । ऐसी चमत्कारिक शिक्षाविद थीं कल्पना !

कल्पना को बचपन से ही चाँद-सितोरों की दुनिया में सैर करने का शौक था । उनकी ये इच्छा पूरी तो हुई मगर अफ़सोस कि वो उसी दुनिया की बन के रह गयीं ।

रामधारी सिंह दिनकर जी ने - "चरणतल भूगोल मुट्ठी में निखिल आकाश" द्वारा पृथ्वी के ऐसे अंतरिक्ष यात्री की कल्पना की थी जो कल्पना चावला सरीखा होगा । उनकी इस कल्पना को निश्चित ही वो बच्चे ज़रूर पूरा करेंगे जिनकी प्रेरणा थीं कल्पना चावला !!

डॉ. देवकी नंदन
ए-304-बी, हृषिकेश, स्वामी समर्थ नगर,
अंधेरी (प.), मुंबई - 400 053.

मलेरिया वंशाणु कूट . . . .

(पृष्ठ -56 का शेष भाग)

ने सूत्र सदृश्य प्लाजमोडियम फैल्सीपेरम के सभी वंशाणु अनुक्रमों की पहचान कर ली है । ब्रिटिश शोधशास्त्री नील हॉल ने आशा व्यक्त की है कि इस अध्ययन से नवीन औषधियों के तथा मलेरिया उपचार के विकास में सहायता प्राप्त हो सकेगी ।

"मलेरिया जीनोम" शीर्षक से "नेचर" के अक्तूबर 2001 अंक में प्रकाशित प्रतिवेदन में मलेरिया प्रसार के उत्तरदायी पोषक - एनोफ्लीज़ गैंबाई (Anopheles gambii) के आनुवंशिकीय मानचित्र को भी दर्शाया गया है । मानव जीनोम योजना के पूर्ण हो जाने के परिणामस्वरुप अब इस दुर्दांत व्याधि से मुक्ति का मार्ग प्रशस्त होने की पूरी संभावना है । मलेरिया विश्व में लगभग 10 लाख व्यक्तियों को प्रतिवर्ष काल कवलित करता रहता है । इनमें अधिकांश 5 वर्ष से कम आयु के शिशु शामिल हैं । एड्स और क्षयरोग को छोड़कर मलेरिया विश्व की शीर्ष प्रणाली व्याधियों में से एक है ।

मलेरिया परजीवी में 14 गुणसूत्र और 5,279 वंशाणु होते हैं । मानव जीनोम में लगभग 30,000 निमैटोड्स में 18,000 तथा एनोफिलीज़ गैंबी मच्छर में लगभग 13,000 वंशाणु होते हैं । लगभग 60 वंशाणुओं की कार्यप्रणाली अभी तक अज्ञात है तथापि परजीवी के उपापचय की अंतर्दृष्टि हेतु मार्ग प्रशस्त हो चुका है ।

प्रस्तुति : **रामप्रताप तिवारी**
भारतीय लाख अनुसंधान संस्थान,
नामकुम-रांची (झारखंड) - 834 010.

❑❑❑

कुछ फूल : कुछ कांटे

'वैज्ञानिक' पत्रिका का नियमित अध्ययन कर रहा हूं। इससे मेरे मन-मस्तिष्क पर धनात्मक असर हो रहा है। मैं स्वयं तो अधिक कुछ न कर सका, परंतु अपने मित्रों (डॉ. आदेश कुमार एवं डॉ. मनोज धौलाखंडी) को लेख लिखने के लिए सदैव प्रेरित करता रहता हूं। इस प्रेरणादायक पत्रिका का ही नतीजा है जो मुझे अंतर्राष्ट्रीय शोधार्थी का पुरस्कार मिला तथा गत वर्ष आस्ट्रेलिया जाने का सुअवसर भी प्राप्त हुआ।

"वैज्ञानिक" पत्रिका का हिंदी संस्करण वास्तव में अतुलनीय है। इससे एक ओर जहां नवीन वैज्ञानिकी ज्ञान बढ़ता है वहीं दूसरी ओर हमारी राष्ट्र भाषा को भी समुचित मान मिलता है। धन्य हैं पत्रिका के संपादन मंडलीय सदस्य, जिनके अथक एवं अतिरिक्त प्रयासों से पत्रिका को फलने-फूलने का अवसर मिलता है। इस पत्रिका में विज्ञान में हो रही नवीन खोजों का भंडार रहता है जिसे जितना पाओ उतनी ही जिज्ञासा बढ़ती है।

एक विनती है कि समय से "वैज्ञानिक" प्रेषित किया करें।

डॉ. सुनील कुमार सिंह
216, गंगा नगर, ऋषिकेश (उत्तरांचल)

अप्रैल-सितंबर 2002 के 'वैज्ञानिक' में "आमटे की मूक क्रांति" विषय पर श्री भट्टाचार्जी का संस्मरण पढ़ने का सुअवसर मिला। यह संस्मरण मुझे बहुत ही अच्छा लगा। ज्ञान वृद्धि के साथ-साथ उत्साह वर्धक साबित हुआ। इस छोटे से संस्मरण में, देश में धार्मिक एकता के प्रतीक क्या हों, सीमित संसाधनों से रोजगार कैसे उत्पन्न किये जाये, बंजर भूमि को हरियाली में कैसे बदला जाय, खेती और प्रयोगशालाओं में सामूहिक कार्य भावना का विकास कैसे किया जाय इत्यादि गूढ़ विषयों पर बाबा आमटे के विचारों और क्रांतिकारी कार्यों पर प्रकाश डाला गया है। आनंदवन की यह सैर कई मायने में हमारे जैसे लोगों के लिए जिन्हें वहां जाने का अवसर नहीं मिला है बड़ी ही लाभप्रद प्रतीत हुई। मैं पटना साइंस कॉलेज में विगत 32 वर्षों से भौतिक विभाग में अध्यापन का कार्य कर रहा हूं। ग्रामीण प्रवेश से जुड़े होने के कारण आपका यह लेख मुझे बड़ा ही रोचक लगा। मुझे भी ग्रामीण क्षेत्र में इस तरह के कार्य करने की रुचि है। अवसर मिलने पर आनंदवन अवश्य जाऊंगा।

प्रो. ए. के. पी. यादव
11 C, राजेंद्र नगर, पटना - 800 016

मुझे पत्रिका के अंक बहुत ही अच्छे लगते हैं तथा मैं चाहता हूं कि समय-समय पर अपने विचार इस पत्रिका में प्रकाशित करता रहूं जो कि अपने विचारों को दर्शाने का एक सशक्त माध्यम है। इसी आशा से पत्रिका को पढ़कर संतोष मिलता है।

अशोक कुमार

"वैज्ञानिक" का प्रतियोगिता विशेषांक मिला। अंक पठनीय है। नोबेल पुरस्कार : किसे और क्यों ? लेख ज्ञानवर्धक है। टिप्पणियों के अंतर्गत दी गयी जानकारियां आकर्षक हैं। अच्छे संपादन के लिए बधाई !

डॉ. धनराज चौधरी
2, छ-5, जवाहर नगर, जयपुर 302 004

"वैज्ञानिक" 'अप्रैल-सितंबर' 2002 का अंक बहुत अच्छा लगा खासकर प्रतियोगिता लेख रोचक एवं ज्ञानवर्धक थे। एक लेख वैमानिकी से संबंधित पृष्ठ-34 में तालिका-1 में परीक्षण में पराक्षव्य परीक्षण गलत है इसे पराश्रव्य परीक्षण अर्थात अल्ट्रासोनिक टेस्टिंग कहते हैं जो गैर विध्वशंक परीक्षण (एन डी टी) का एक भाग है। वस्तुतः सामग्री का डी. पी. टेस्ट, रेडियोग्राफी टेस्ट के बाद अल्ट्रासोनिक टेस्ट, होता है जो किसी भी कोड में मान्य है जिसे एन. डी. टी. कहते हैं।

संजय गोस्वामी
क्यू. ए. एन. आर. जी., बी. ए. आर. सी., मुंबई-85

"वैज्ञानिक" का प्रतियागिता विशेषांक प्राप्त हुआ, सुंदर कलेवर, भावप्रवण सामग्री और लेख चयन हेतु मेरी ओर से समस्त "वैज्ञानिक" प्रकाशन परिवार को साधुवाद।

कु. विजया तिवारी
द्वारा रामप्रताप तिवारी, भारतीय लाख अनुसंधान संस्थान, नामकुम, रांची - 834 010 (झारखंड)

विज्ञान कविता

आण्विक ताप विद्युत गृह

अणु ऊर्जा से लैस है, विद्युत गृह परिवेश,
ज्योति रश्मि उतरे धरती पर यह उसका संदेश ।

कुंती सा कंट्रोल रूम है भारी जल है कौन ?
स्वच्छ शीतलक बना, युधिष्ठिर साधक सा है मौन ।

अर्जुन सा पुरुषार्थ लिये चल रहा जनेरेटर है,
उसके विद्युत उत्पादन से प्रगति क्रांति का स्वर है ।

फ्यूल पिन जो नकुल वेश में श्याम सदा रहता है
अणु की शक्ति उसी में केंद्रित, आंच दिया करता है ।

उसी आंच से स्वाभिमान है, बॉयलर के पानी में,
शक्तिपुंज जो भीम बना है, विद्युत गृह प्रांगण में ।

ट्रांसफॉर्मर सहदेव सरीखा, सुंदर है शालीन,
तारों में विद्युत धारा दे रात हुई रंगीन ।

पांचो पांडव टरबाइन का रूप निरखते रहते,
नाच रही द्रौपदी शक्ति बन अभियंता हैं कहते ।

श्रीमती आशा सिंह
531, मीरापुर, नेहरू नगर, इलाहाबाद, (उ. प्र.)

रचनाकारों से विशेष निवेदन

कृपया प्रकाशनार्थ पांडुलिपि तैयार करते समय संपादन की सुविधा के लिए निम्नलिखित निर्देशों का पालन करें :

1] (क) विभक्तियों को शब्दों से अलग लिखा जाये -
उदाहरण - 'राम ने', 'मेज पर', 'लड़कों को'
(ख) सर्वनामों की सभी विभक्तियों को मिला कर लिखा जाये-
उदाहरण - 'उसने', 'मैंने', 'उनका', 'हमसे'
(ग) जिन सर्वनामों के अंत में 'ही' अथवा 'ई' लगा हो, उनकी विभक्तियों को अलग लिखा जाये -
उदाहरण - 'इसी से', 'तुम्हीं को', 'सभी को'

2] पूर्वकालिक क्रियाओं के 'कर' को अलग लिखा जाये -
उदाहरण - 'जा कर', 'आ कर', अन्यथा 'कर' मिलाकर लिखें ।

3] संयुक्त क्रियाओं में दोनों अंशों को अलग-अलग लिखा जाये -
उदाहरण - 'आ गया', 'चल पड़ा', 'हो सका'

4] जिन भूतकालिक कृदंत क्रियाओं अथवा विशेषणों का अंत 'या' से होता है, उनके स्त्रीलिंग और बहुवचन रूपों में 'य' का ही प्रयोग किया जाये -
उदाहरण - 'गया, गयी, गये', 'नया, नयी, नये', 'आया, आयी, आये', 'लाया, लायी, लाये', 'पाया, पायी, पाये', 'खाया, खायी, खाये', 'किया, किये' आदि ।
दृष्टव्य है कि 'भाई', 'लाई', 'पाई' आदि संज्ञाएं हैं । भविष्यकाल में ये रूप निम्न प्रकार होंगे - आयेगा, पायेगा, लायेगा, जायेगा आदि । आवेगा, जावेगा आदि प्रयोग ठीक नहीं हैं ।

5] 'हुआ' जैसी जिन क्रियाओं के अंत में 'आ' है उनके स्त्रीलिंग 'हुई' व बहुवचन 'हुए' के अनुसार होना चाहिए ।

6] 'लिये/लिए' : 'लिये' को 'लिया' का बहुवचन रूप मानें और 'लिए' को विभक्ति चिन्ह ।
'चाहिये/चाहिए' : 'चाहिए' ही लिखा जाये ।

7] 'एसा/ऐसा' : 'ऐसा' लिखा जाये ।
'दिखाई/दिखायी' : 'दिखाई' संज्ञा रूप मानें और 'दिखायी' भूतकालिक क्रिया (स्त्रीलिंग) । *उदाहरण* - 'सांप दिखाई पड़ा', 'मैंने उसे पुस्तक दिखायी' इसी प्रकार 'पढ़ाई' और 'पढ़ायी' में भी अंतर करें ।

8] आदरार्थ आज्ञा रूपों में संभावनार्थक क्रियाओं में 'ए' ही लिखा जाये -
उदाहरण - 'आइए', 'खाइए', 'जाइए', 'समझिए', 'कीजिए', 'रखिए' आदि ।

9] अनुस्वार और अनुनासिक ध्वनियां : 'संयुक्त व्यंजन' की अनुनासिक ध्वनि को 'अनुस्वार' के द्वारा दर्शाया जाना चाहिए - वर्ग का प्रत्येक पंचम वर्ण यथा, ङ ('क' वर्ग), ञ ('च' वर्ग), ण ('ट' वर्ग), म ('प' वर्ग), व न ('त' वर्ग) अनुनासिक ध्वनियां हैं ।
अनुस्वार स्थापन का नियम इस प्रकार है : जिस किसी अक्षर के आगे यदि उसी वर्ग की अनुनासिक ध्वनि है तो उसे अनुस्वार (बिंदी) से बदला जा सकता है;
उदाहरण - कंगन, अंक, व्यंजन, रंजन, ठंडा, डंडा, पंडित, कंपन, पंप, बंद, परंतु, किंतु, मृगांक, दंडित, संबंध, अंत आदि ।
इस नियम का प्रयोग ध्यानपूर्वक करना चाहिए, अन्यथा अर्थ का अनर्थ भी हो सकता है । जन्म, मान्य, समन्वय, सम्मति आदि शब्द वैसे ही रहेंगे ।

10] एकवचन से बहुवचन - 'या' से 'ये', 'ए' नहीं । जैसे, रुपया - रुपये, हंसिया - हंसिये ('हंसिए' आदरार्थ आज्ञा रूप होगा)

11] संस्कृत के जो शब्द हिंदी में तत्सम रूप में प्रचलित हैं, उनमें 'य' का व्यवहार उचित है । जैसे, अस्थायी, बाजपेयी, उत्तरदायी आदि । इन्हें अस्थाई, बाजपेई, उत्तरदाई लिखना न तो व्याकरण सम्मत है और न व्यावहारिक ।

12] चंद्र-बिंदु का प्रयोग - छपाई की सुविधा के लिए चंद्र-बिंदु की ज़गह अनुस्वार का प्रयोग किया जाये । जैसे, अंधा, आंख, अंगना, चांद, मां, पहुंचना, हां आदि ।

13] संख्याओं को अरैबिक (अंग्रेजी) में लिया जाये - 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, 0

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद के लिए डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल द्वारा संपादित तथा श्री कुलवंत सिंह द्वारा वन अप प्रिंटर्स, चेंबूर, मुंबई (फोन : 2521 2348 / 2521 6284) में मुद्रित व प्रकाशित ।

दिल्ली, नयी दिल्ली, महाराष्ट्र, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान व उ. प्र. के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूलों व कॉलेजों के लिए स्वीकृत

'हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद' की वैज्ञानिक मोनोग्राफ प्रकाशन योजना

परिषद ने विज्ञान के विभिन्न विषयों पर मोनोग्राफ (पृष्ठ संख्या लगभग 64, 96, 128, 192, 256) प्रकाशित करने की एक योजना बनायी है। इस कार्य के लिए उचित मानदेय, (120 रु प्रतिपृष्ठ लेखन एवं टंकण, चित्रों इत्यादि के लिए अलग) देने का प्रावधान है। परंतु प्रकाशित सभी पुस्तकों पर परिषद के सर्वाधिकार सुरक्षित रहेंगे। विषय-विशेषज्ञों से लगभग 5-6 पृष्ठों में पुस्तकों की विस्तृत रूपरेखाएं आमंत्रित हैं। जिसमें अध्याय, अनुच्छेद, संदर्भ सूची इत्यादि की जानकारी हो।

मोनोग्राफ मुख्य वैज्ञानिक विषयों यथा नाभिकीय, ताप, रसायन, जीव विज्ञान आदि पर न होकर उप-विषय, जैसे आइसोटोप, लेसर, रेडियोधर्मिता, अतिचालकता आदि पर हों। उदाहरणार्थ कुछ उप-विषयों के सुझाव इस प्रकार हैं :

- नाभिकीय ऊर्जा के शांतिमय उपयोग
- नाभिकीय रिएक्टर
- नाभिकीय ईंधन - यूरेनियम, प्लूटोनियम
- नाभिकीय पदार्थ - कवच, मंदक, परिरक्षक एवं अन्य
- आइसोटोप उत्पादन व उपयोग
- रेडियोसक्रिय विकिरण व उनके उपयोग
- नाभिकीय ऊर्जा एवं सुरक्षा
- एजिंग (काल प्रवाहन) एवं डिकमीशनिंग
- ईंधन पुनर्संसाधन
- अन्य संबद्ध कार्य

रूपरेखाओं का मूल्यांकन परिषद द्वारा गठित एक विशेष समिति करेगी। मूल्यांकन रिपोर्ट प्राप्त होने के बाद लेखक को परिषद के साथ लेखन कार्य संबंधी अनुबंध पर हस्ताक्षर करने होंगे। इस संबंध में अधिक जानकारी के लिए परिषद सचिव से इस पते पर संपर्क करें :

श्री रमेश चंद्र पंत, अध्यक्ष, रिसर्च रिएक्टर मेन्टेनेंस डिवीजन (RRMD),
ध्रुव रिएक्टर, भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, मुंबई - 400 085

E-mail : rc_pant@hotmail.com / rcpant@apsara.barc.ernet.in

Fax : 022-550 5311